इलाहाबाद लॉ जर्नल

मानिनी गोपा

[एकांकी नाटक]

लेखक

हरिनारायण मैणवाल, एम० ए०

सम्पादक : "प्रगतिशील" जयपुर

प्रकाशक

इलाहाबाद लॉ जर्नल कं० लि०

इलाहाबाद

प्रथमबार] १९५३ [मूल्य १)

विषय-सूची

भूमिका

मैणवाल के एकांकियों पर एक दृष्टि

[प्रो० श्री रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, रिसर्च स्कालर, हर्बर्ट कालिज, कोटा]

जीवन का दारुण सत्य और आशा का सन्देश

मैणवालजी मौलिक एकांकी सृजन की प्रतिभा लेकर हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए हैं। यद्यपि आप पाश्चात्य टेकनिक से प्रभावित हैं, किन्तु आपने अपने पथ का निर्धारण करने में किसी भी पाश्चात्य एकांकीकार का अनुकरण नहीं किया है। ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकियों में भी आपने निज-कल्पना और प्रतिभा के स्पर्श से नवीनता की सृष्टि की है। आपकी कल्पना और अनुभव के आधार पर खड़े होनेवाले सामाजिक एवं प्रचारात्मक एकांकियों के सम्बन्ध में तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उनका आधार ठोस जीवन है। यहाँ भारतीय जन-समाजके कठोर जीवन की निर्मम झाँकी हमें दी गई है। इन एकांकियों में जीवन का दारुण सत्य है, साथ ही आशा का सन्देश भी।

'प्रसाद' का प्रभाव

मैणवालजी के प्रारंभिक एकांकियों पर "प्रसाद" का प्रभाव स्पष्ट है। "प्रसाद" की नाट्य-पद्धति की कहानियों के नाटकत्व तथा भाषा की रूपमाधुरी, ज़िन्दादिली, संस्कृति-प्रेम का प्रभाव कहीं-कहीं मुखरित हो गया है। हार्डी (Thomas Hardy) का दुःखवाद कहीं-कहीं आपकी विचारधारा को स्पर्श करता है, किन्तु "प्रसाद"-साहित्य के अनुशीलन की प्रतिक्रिया ने आपको हिन्दी-नाट्य संसार में एक आदर्शोन्मुख आशावादी व्यक्तित्व बना दिया है। यही कारण है कि आपके करुण और दुखान्त एकांकियों में भी आशाकी स्वर्ण-रेख चमकती है।

पद्धति एवं टेकनिक

टेकनिक की दृष्टि से मैणवालजी का योग चिरस्मरणीय है। अँग्रेजी पद्धति के अनुसार आप कई दृश्य वाले तथा अधिक पात्रों वाले लम्बे-लम्बे विचार या मत-विशेष के प्रतिपादन से बोझिल एकांकियों की अपेक्षा एक दृश्य तथा कम पात्रों वाले एकांकी लिखना अधिक पसन्द करते हैं। छोटे, किन्तु सम्वेदना की तीव्रता सम्हाले हुए तीखे एकांकियों का निर्माण करना आपकी विशेषता है। आप दो-तीन पात्रों की सहायता से एक ही स्थान पर, उसी समय घटनाओं को जोड़-तोड़ कर चरित्र की किसी विशेष वृत्ति एवं मनो-

दशाका मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन कर देते हैं। ऐसे एकांकीकार को तीव्र सम्वेदना (Acute Sensation) और प्रभाव की ऋजुता का भी पूरा-पूरा ध्यान रहता है; क्योंकि प्रधानतः इन्हीं मूल तत्वों पर उसकी सफलता या असफलता आँकी जा सकती है।[1]

मौलिक भाव और मधुर अनुभूतियाँ

मैणवालजी की मनोवृत्ति मनोवैज्ञानिक है। अपने पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों में भी कथानक पुराना

---

[1] "मैं उस समय का स्वप्न देखता हूँ, जब भारतवासी बेरोजगार, अकर्मण्य, आलसी नहीं रहेंगे। एक दिन भारत रूस और अमेरिका के समान उन्नत और समृद्धशाली होगा और भारतवासियों को एक क्षण का भी अवकाश नहीं मिलेगा। राष्ट्र के सम्मुख काम ज्यादा होगा तथा मानव कम रहेंगे। ऐसे युग में देशवासियों को रामायण, महाभारत जैसे विशालग्रन्थ, या लम्बे उपन्यास, नाटक इत्यादि को पढ़ने का समय कहाँ मिलेगा ? ऐसे नितान्त व्यावहारिक जीवन को कदाचित् ये कुछ ही क्षणों में मजा-चखाने वाले एकांकी ज्यादा पसन्द होंगे। ऐसे भौतिकवादी एवं यथार्थवादी जीवन में ये एकांकी अतीत संस्कृति का सन्देश सुनाने में सफल हो सकेंगे। अपने भावी एकांकियों में मैं कुछ ही क्षणों में पूर्ण आनन्द देने का प्रयास करूँगा"—हरिनारायण मैणवाल (पत्र से)

होते हुए भी आपने मौलिक भाव और मधुर अनुभूतियाँ भर दी हैं। उनमें नए प्राण आ गये हैं। मनोवैज्ञानिक पद्धति पर प्रसूत "कृष्णवियोगिनी" भावव्यंजना तथा शैली में चिर नवीन है। अनुभूति की सूक्ष्मता मार्मिक ढंग से व्यक्त हुई है। अनुभूति के भावात्मक होनेके कारण कल्पना का सुचारु उपयोग हुआ है। गूढ़ आत्मानुभूति का करुणात्मक और नाटकीय निवेदन कितना भावमय हो सकता है, इसका सफल प्रमाण "कृष्ण-वियोगिनी" का अन्तिम वक्तव्य है, जहाँ प्रमादनी राधा का चित्रण किया गया है। आपकी केवल अनुभूति ही तरल नहीं, उसके पीछे बौद्धिक तत्त्व भी है। आपके समस्या नाटकों में यह ठोस बौद्धिक तत्त्व नाना रूप ग्रहण कर हमारे समक्ष उपस्थित होता है। इन नाटकों में आपने समाज के भीतरी पर्व फाड़कर दारुण अत्याचार और समाज की भग्न-जीर्ण अट्टालिकाएँ दिखाई हैं।

"प्रसाद" का प्रभाव दो रूपों में मूर्त हो उठा है (१) विचारधारा में भारतीय गौरव, संस्कृति एवं भावात्मक आदर्शवाद। इन एकांकियों में विचार-गौरव तथा प्राचीन आर्य-संस्कृति के सम्बन्ध में भावात्मक विवेचना है। नाट्यकार ने भारतीय संस्कृति के प्रतीक सांस्कृतिक-पौराणिक कथानकों को चुना है।

"प्रतिज्ञा", "शत्रु से प्रेम", "पर्जन्य-यज्ञ", "पितृ-भक्त" —में प्रसाद के नाटकों वाली पद्धति स्पष्ट है। वही समाज

की प्रवृत्तियोंका सूक्ष्म निरीक्षण, मनोवैज्ञानिक चित्रण, सरसता के लिये मधुर गीतों की योजना, सांस्कृतिक एवं भारतीय हिन्दू इतिहास के कथानक, गुरु-गंभीर संस्कृत-मयी भाषा के प्रयोग, स्वगत इत्यादि। सांस्कृतिक नाटकों में प्रौढ़ता, रस और संगीत का अपूर्व सम्मिश्रण है।

'मैणवाल' की विशेषता

अभी हिन्दी साहित्य में ऐसे एकांकियों की कमी है, जो तीव्र सम्वेदना, (Acute Sensation) प्रभाव की ऋजुता, आकस्मिकता, गोपन-व्यंजना आदि कहानी के-से तत्त्वोंको रखते हुए केवल एक दृश्य से अधिक की कामना नहीं रखते। एक दृश्य में ही वे भरपूर और अपने आपमें हर प्रकार पूर्ण होते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैणवालजी एकांकी-क्षेत्र में अग्रसर हुए हैं। यही इनकी विशेषता है।

आपके एकांकियों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) सामाजिक-समस्या-एकांकी

(१) सौभाग्य-सिन्दूर (२) मोटर साइकिल (३) ग़रीब का संसार (४) सहशिक्षा (५) नेताजी और आज़ाद हिन्द फ़ौज (६) गृहस्थी (७) साथी (८) ताड़-गुड़ (९) कौंसिलर।

(२) सांस्कृतिक-पौराणिक आदर्शवाद

(१) प्रतिज्ञा (२) शत्रु से प्रेम (३) पर्जन्य यज्ञ (४) गुरु-दक्षिणा (५) पितृ-भक्त (६) कृष्ण-वियोगिनी—

ऐतिहासिक

(१) खुसरू की आँखें।

समस्या-एकांकी

श्री मैणवाल के सामाजिक समस्या-नाटकों में नाना समस्याएँ उभारी गई हैं। निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से वे इनका चित्रण कर देते हैं; समस्या के सुलभाव के संकेत भी कर देते हैं, किन्तु स्पष्ट नहीं कहते। समाज का पर्दाफाश कर वे हमें प्रताड़ित वर्ग की एक भाँकी प्रस्तुत कर देते हैं, जैसे हमसे कहते हों, "समाज का रुपहला कृत्रिम स्वरूप तो आप देखते ही हैं, युगों-युगों से उसके अन्तराल में संचित इस कड़वाहट और विद्रूपता को भी आपने देखा है ?" पूंजीवाद के विरुद्ध आपने आवाज़ ऊँची की है। आज मध्यवर्ग के करोड़ों गृहस्थ महँगाई और भूठा दिखावा की चक्की के दो पाटों में निर्ममता से पीसे जा रहे हैं। उनका स्वर आप मुखरित कर सके हैं। समाज में जो Exploitation, चल रहा है, उसका चित्रण इन एकांकियों में उपलब्ध है।

जिन समस्याओं को आपने अपने एकांकियों का विषय बनाया है, उनमें से ये प्रमुख हैं :—विधवाओं की दुर्दशा, पूंजीवाद के अत्याचार, किराया, महँगाई, मध्यवर्ग का उत्पीड़न, आधुनिक सहशिक्षा की खराबियाँ, उच्च क्षेत्रों के भ्रष्टाचार, सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं की दुर्बलताएँ, ग़रीबी की असमर्थता, भयंकरता, इत्यादि । ऐतिहासिक नाटकों में मुस्लिम संस्कृति तथा मुग़ल साम्राज्य की समस्याएँ, हिन्दू-मुस्लिम एकता का न होना, मुग़लकालीन राजाओं के पारस्परिक विद्वेष-षड़यंत्र को समझाने का प्रयत्न किया गया है । पौराणिक नाटकों में अतीत भारतीय सांस्कृतिक उच्चता की ओजपूर्ण झाँकी प्रस्तुत की गई है। "खुसरू की आँखें" में नाटचकार ने अकबर की वेदनाओं, जटिल समस्याओं, सम्राट के घात-प्रतिघातों को मुखरित किया है ।

गृहस्थी

"गृहस्थी" एक प्रगतिशील एकांकी है, जिसमें नाटचकार ने आधुनिक मध्यवर्ग के नौकरी-पेशा के जीवन का एक यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है । दिन भर कार्य करने के पश्चात् वह १५०) कमाता है, जिसमें कठिनता से घर का व्यय चलता है । क़र्ज़ बढ़ता है, किराया, दूध के पैसे भी नहीं दे पाता, धनवान के बच्चे उस के बच्चों को चिढ़ाते

हैं। इस नाटक के रामभरोसे उन मध्यम श्रेणी के गृहस्थों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो महँगाई, रिश्तेदारी, बाहरी टीपटाप, अफ़सरों के अत्याचारों और सामान्य गृहस्थी की ज़रूरतें भी पूर्ण नहीं कर पाते। यह मध्यम श्रेणी के एक गृहस्थी का चित्र है।

कुछ समस्याओं की ओर निर्देश निम्न वक्तव्यों में देखिये :—

"यह सन् १९४९ है। एक सामान्य गृहस्थ तलवार की धार पर से गुज़र रहा है। नौकरी बहुत बुरी चीज है। धनवान ग़रीब की सदैव हड्डियाँ चूँसने को प्रस्तुत हैं, अफ़सर सदा मातहत का दिल दुखाने में अपना गौरव समझता है।"

"धनवान के बच्चे तक दुष्ट होते हैं। वे अपनी समृद्धि बता कर ग़रीब के बालकों को बार-बार चिढ़ाते हैं। इससे दीन बालकों की आत्मा निर्बल हो जाती है, उनका आगे जाकर साहस टूट जाता है।"

ग़रीबों का रक्त-शोषण करने वालों के विरुद्ध लेखक की पुकार निम्न शब्दों में व्यक्त हुई है :—

"जी चाहता है इन भूखे व्याघ्रों की लाशें कर दूँ, ख़ून की नदियाँ बहा दूँ और अन्त में जेल के सीखचों में बन्द होकर सड़-सड़कर मर जाऊँ या हम सब एक साथ आत्म-हत्या कर लें। पढ़ा-लिखा हूँ, दिमाग़ रखता हूँ,

शरीर काम करना चाहता है, मरता हूँ, पचता हूँ, पर, फिर भी पेट खाली है। बालक विलख कर रह जाते हैं, स्त्री मन मारकर पत्थर-सी हो गई है और जीवन निरस है। फिर, ऐसे जीवन से कौन-सा लाभ होगा ?

सहशिक्षा

"आधुनिक सहशिक्षा" में वयस्क लड़के-लड़कियों की सहशिक्षा के प्रश्न को उठाया गया है। प्रायः छोटी-छोटी बातों पर लड़के-लड़कियों में कटुता और संघर्ष चलता है। लड़कियाँ छोटी-छोटी बातों की शिकायतें करती हैं। भारत में लड़के और लड़कियों के इस संघर्ष की समस्या का हल नाटचकार ने इन शब्दों में किया है :—

"भारतीय लड़कियाँ सहशिक्षा के अयोग्य हैं। सहशिक्षा पाश्चात्य सभ्यता की एक देन है। जब तक लड़कियाँ पाश्चात्य महिलाओं की तरह झूठी लज्जा को त्याग कर स्वयं को निडर नहीं बना लेंगी, तब तक सहशिक्षा का सफल होना कठिन ही नहीं असंभव है....स्त्री-पुरुष का भेद भूल कर लड़कियों को लड़कों के वातावरण में घुल जाना चाहिए।

"सुन्दर एवं अप्राप्य वस्तु में आकर्षण होता है, किन्तु जब वह वस्तु सदा समीप रहने लगती है, तो आकर्षण की वह तीव्र मात्रा क्रमशः स्वतः ही मिट जाती है। दूसरा प्रभाव

चरित्र एवं व्यक्तित्व का पड़ता है, जिसकी क्षमता के विरुद्ध पुरुष तो क्या देवता भी नहीं ठहर सकते । सीता के पावन चरित्र ने रावण की पापात्मा को परास्त किया; इसी प्रकार सावित्री, द्रौपदी और पद्मिनी आदि भारतीय ललनाओं ने अपनी पवित्र चरित्र-शक्ति के परिचय दिये हैं. . . .।"

नाट्यकार का उद्देश्य यही हृदय-परिवर्तन दिखाना है। जब तक लड़के लड़कियों का हृदय-परिवर्तन नहीं होता, तब तक यह समस्या नहीं सुलझ सकती । यदि लड़कियाँ चाहती हैं कि वे लड़कों के साथ बैठकर शिक्षा प्राप्त करें, तो उन्हें प्रथम स्वयं को सहशिक्षा के योग्य बनाना होगा ।

साथी

"साथी" (१९५०) में जेलकी चारदीवारी के अन्दर होने वाले अत्याचार के साथ दो क़ैदियों की आप-बीती, भारत के १९४९-५० के राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक वातावरण को चित्रित किया है । दो क़ैदी, एक स्त्री, दूसरा पुरुष, जेल की चार दीवारी के भीतर ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं, प्रेम का अंकुर फूटता है, किन्तु क्रूर जेलर द्वारा कुचल दिया जाता है । इस एकांकी का नायक एक राजद्रोही है । उसके क़ैद होनेका कारण उसीसे सुनिये । भारत को आजादी मिलने के बाद की राजनैतिक अवस्था का इससे सही अनुमान हो सकता है :—

"साथी—भूल से समझ बैठा था कि आज़ादी मिल गई है। विचार-स्वतन्त्रता और सत्य की बेड़ियाँ काटकर ग़रीबों की आवाज़ बुलन्द करने लगा। हड़तालें हुईं; मिल ठप्प थी, रेलों के चक्के जाम हो गये और जनता की बुलन्द आवाज़ से आकाश फटने लगा। अवसरवादी सफ़ेदपोश घबरा उठे, उनकी कुर्सियाँ उलटने लगीं। और, मोटे पेट का पानी सूखने लगा। बस, फिर क्या था, अँग्रेज़ों जैसा दमन-चक्र चला, विचार-स्वतन्त्रता का गला घोंट दिया गया और सत्य के हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ डाल दी गईं।....मैं एक भयंकर राजद्रोही हूँ।"

ताड़-गुड़

"ताड़-गुड़" (१९५०) प्रचार की चीज़ है, जिसमें ताड़-गुड़ की उपयोगिता, महत्त्व, लाभों को नाटकत्व प्रदान कर दिया गया है। इसका प्रधान पात्र सम्पादक कहता है—

"ताड़-गुड़-उद्योग 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन का सहायक है। गन्ने की काश्त पर ताड़-गुड़ उद्योग का सीधा प्रभाव यह पड़ेगा कि किसान खेतों में गन्ना बोने के

बजाय, अन्न उत्पन्न करेंगे; क्योंकि आजकल हज़ारों एकड़ उपजाऊ ज़मीन गन्ने की काश्त ही घेर लेती है। ज्यों-ज्यों ताड़-गुड़ उद्योग बढ़ेगा, त्यों-त्यों गन्ने की काश्त घटेगी और ज्यादा अन्न उत्पन्न होगा....गन्ने के उगाने में, सींचने में, काटने में, पेलने में और रक्षा करने में बीसों झंझट करने पड़ते हैं। वह तो किसान के खून का पानी बना देता है, पर खजूर के पेड़ लाखों की संख्या में खड़े हैं.... ये खजूर के वृक्ष राजस्थान की मरुभूमि में अमृत देंगे।"

इस एकांकी में योजनाओं की सफलता अच्छे कार्य-कर्ताओं के ऊपर निर्भर है, इस तत्त्व को स्पष्ट कर दिया गया है।

कौंसिलर

"कौंसिलर" में एक आदर्शवादी नवयुवक म्यूनिसिपल कौंसिलर का चित्र है। म्युनिसिपैलिटी में जो रिश्वत, अत्याचार और लूटने का वातावरण रहता है, उसका चित्रण करना लेखकका उद्देश्य है। इसमें पं० विश्वेश्वर के रूप में जन-सेवक के आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है। वह त्यागमय होकर आदर्श हो गया है। इसमें हम उनके चरित्र की निष्ठा, बलिदान, सचाई और कठिनाइयों, परिस्थितियों की भीषणता देखते हैं। पं० विश्वेश्वर रिश्वतों के प्रलोभनों से बचते हुए त्याग और जन-सेवा के मार्ग पर अटल बने रहते हैं।

यह चित्र कर्तृत्व की प्रेरणा के लिए चित्रित किया गया है। यथार्थवादी आदर्श का उत्कृष्ट उदाहरण है। यही प्रवृत्ति विश्वेश्वरके समस्त वक्तव्योंमें परिलक्षित होती है :——जैसे——

"क्या आप चाहते हैं कि मैं अपना ईमान कुछ चाँदी के टुकड़ों में बेच दूं; जिनकी सेवा करने को खड़ा हुआ हूँ, उन पर ही जुर्म करूँ और अपने स्वार्थ के लिए अपनी आत्मा को धोखा देने लगूं। सचाई और ईमान पर चलने वालों की दशा तो सदा ख़राब रहती है, पर उनका सिर सदा ऊँचा रहता है। यदि परिस्थिति को अपने अनुकूल न बना सका, तो मैं इस क्षेत्र से दूर हो जाऊँगा। पर, मुझे पूरा भरोसा है कि अन्तिम विजय सत्य की ही होगी।"

मैं अपना कर्त्तव्य-पालन कर रहा हूं और भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे हैं। सच्चे लोक-सेवकों, निस्वार्थी कार्यकर्त्ताओं और होनहार लेखकों के मूल्य को अभी हमारे राष्ट्र ने नहीं पहिचाना है।"

घर-गृहस्थी तथा संसार की विषमताओं में पिसता हुआ भी विश्वेश्वर अपने आदर्श के लिए युद्ध करता है। उसका आदर्शवाद यथार्थवाद के भीतर से ही पनपता है। अवसाद के साथ ही आशा की एक पतली रेखा उसके जीवन-दर्शन में वर्तमान है।

ग़रीब का संसार

"ग़रीब का संसार" में एक निर्धन आत्म-सम्मानी विद्यार्थी के बलिदान, हृदयहीनता, और अवसाद-पूर्ण क्षणों की एक झाँकी है। दीनानाथ के ये शब्द कितने भव्य हैं—

"मैं ग़रीब अवश्य हूँ, परन्तु ग़रीब की आत्मा पूंजीपतियों की आत्मा से अधिक बलवान होती है। इस प्रकार शिक्षा के आधारपर मैं दीनता से कब तक युद्ध करता रहूँगा ? मैंने अपने स्वाभिमान को अभी नहीं बेचा है।"

ग़रीबी की चक्की में दीनानाथ और उसकी माँ पिस जाते हैं, लक्ष्मी के पुजारी उनकी पतितावस्था पर हँसी करते हैं, उन्हें घृणा की वस्तु समझते हैं। ग़रीबों की हड्डियाँ चूसनेवाले हृदयहीनोंका बड़ा मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। पुंजीवाद के विरुद्ध नाटचकार के हृदयमें जो अग्नि है, वह यहाँ सुलग उठी है।

सौभाग्य-सिन्दूर

"सौभाग्य-सिन्दूर" हिन्दू समाज में विधवा की पतितावस्था पर आधारित है। वैधव्य जीवन किस प्रकार अभिशाप बन जाता है; प्रकृति आकर्षण की ओर खींचती है, मन में रस का उफान रहता है, किन्तु यह सब हृदय ही हृदय में कुचला जाने के लिए होता है। विधवा की अवसादपूर्ण

गाथा इस एकांकी में भर दी गई है। लोक-समाज की आलोचना की पद्धति का भी इसमें चित्रण किया गया है।

निष्पक्ष सामाजिक आलोचना

मैणवाल जी ने समाज के गलित अंगों की ओर सफलता-पूर्वक निर्देश किया है। आप सामाजिक विद्रूपताओं की ओर निर्देश भर कर देते हैं। सामाजिक विषमताओं का यथातथ्य वर्णन उनके साहित्य में मिलता है। उनमें जोला और गाल्सवर्दी जैसी तटस्थता है। उनका अनुवीक्षण तीव्र और पारदर्शी है---बाहर की तहों को बींधता हुआ, वह उस मर्म पर आघात करता है, जहाँ विनाश और पतन के कीटाणु समाज की जड़ काटने पर तुले हुए हैं। मैणवाल का यथार्थ-वाद उनकी बौद्धिक प्रकृति पर आश्रित है।

मौलिक एकांकीकार

अपने पौराणिक एकांकियों में भी मैणवालजी ने मौलिकता का समावेश किया है। "कृष्ण-वियोगिनी" की नायिका, राधा वियोग की अग्नि में जलने वाली निश्चेष्ट स्त्री न होकर लोक सेवा में तत्पर उत्साही कर्ममार्गिनी है। उसका एक वक्तव्य देखिये।

राधा---"अरी गोपियो, यहाँ बैठी-बैठी क्यों ऊँघ रही हो ? देखती नहीं.... ब्रज का सारा गोधन जंगल

में बिखर चुका है––पशुओं की रक्षा करना है। ललिता, तुम तीनों गौधन को नगर की ओर सुरक्षित स्थान पर ले चलो और मैं बिखरे हुए पशुओं को जंगल से ढूंढ़कर लाती हूँ। जब ब्रज बालाएँ मेरे साथ सब कुछ भूलकर लोकसेवा में जुट जायँगी, तब ब्रज के उत्साह-हीन ग्वालबाल और किसानों के कृष्ण-वियोग से बुझे हुए हृदयों में स्फूर्ति आ जायगी। वे अपने हल और बैलों को सम्हाल लेंगे–– ब्रज पुनः हरा-भरा होकर लहलहाने लगेगा....ब्रज की सुरक्षा के लिए मेरे समान समस्त ब्रजवासियों को कृष्ण बनना ही होगा।"

प्राचीन कथानकों की यह नवीन व्याख्या अभूतपूर्व है। हिन्दी में ये व्याख्याएँ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से होती रहीं। मैणवालजी ने युगकी बढ़ती हुई बौद्धिकताका परिचय दिया है।

नाटकीय स्थिति की पकड़

टेकनिक की दृष्टिसे मैणवालजी की विशेषता नाटकीय स्थिति (Dramatic Situation) की पकड़ है। पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते हुए आप ऐसी स्थिति का चुनाव करते हैं, जिसमें दर्शक और पाठक की समस्त मनोवृत्तियां केन्द्रित हो जाती हैं। कथानक के प्रदर्शन में कौतूहल को विशेष स्थान दिया जाता है।

कथोपकथन

कथोपकथन दो प्रकार के हैं। पौराणिक-सांस्कृतिक नाटकों के कथोपकथन गंभीर, साहित्यिक और भावुकता से स्निग्ध हैं। इनमें कल्पना की रंगीनी और विषय गौरव है; बुद्धि-व्यापार से अधिक विमुग्धता है। विषाद, अवसाद और क्रोध के स्थल भी बड़े तीखे और मर्मस्पर्शी हैं; जैसे—
राक्षस——

राक्षस——"इसका परिणाम उसको भोगना ही पड़ेगा। समस्त पंचनद पदाक्रान्त होगा। यवन विजय-पताका भारत के वक्षस्थल पर मँडरायगी। यवन-कोष भारतीय श्री से सुशोभित होगा। रक्तपात और अन्याय होंगे। सीमान्त आर्यावर्त के पश्चिमी मंडल सदैव के लिए अशक्त और निर्बल हो जायँगे।"

——प्रतिज्ञा

कहीं-कहीं अप्रस्तुत योजना का आधार प्रकृति के मनोमुग्धकारी स्वरूप को बनाया गया है। मूल विषय के वेग को प्रकट करने के लिए अप्रस्तुत प्राकृतिक व्यापारों का भी सम्मिश्रित वर्णन है, जैसे——

आचार्य——"राजन्, विलम्ब के लिए समय नहीं है। बलिदान हो, जिसके फलस्वरूप यज्ञकुंड में से छोटे-छोटे

स्फुलिंग उड़-उड़ कर संध्या की लालिमा में आर्य-गौरव की लालिमा को मिलाकर उसकी सौन्दर्य-श्री को द्विगुणित कर दें। भगवान् भास्कर में इसी वीर की प्रतिभा प्रवेश कर उसकी रश्मिमाला को अधिक स्वर्णिम बना देगी, वह अखिल जगत् की कान्ति होगी।"

एक वक्तव्य में गद्यकाव्य का माधुर्य देखिये—

"यौवन वसन्त की फुलवारी है—एक लहर है, जो निरन्तर नहीं बहती। पुष्पों के लिए बार-बार वसन्त आता है, समुद्र में लहरें उठती ही रहती हैं, किन्तु जीवन-सागर में यौवन की हिलोर केवल एक बार आती है। इसके पश्चात् वृद्धा अवस्था का पदार्पण होता है। पतझड़ की तरह आशाओं का सुरम्य उद्यान शुष्क हो जाता है, उत्साह की तरंग सदैव के लिए मिट जाती है; सौन्दर्य एवं युवावस्था के सुनहरी स्वप्न केवल स्वप्नमात्र रह जाते हैं, सब अपने पराये हो जाते हैं, शिथिलता एवं निराशा का एक साथ आक्रमण होता है, फूल की विपिन्नावस्था को देखकर भ्रमर-वृन्द व्यंग्य और घृणा करते हैं और केवल शेष रह जाती है, पल्लवविहीन वृक्ष के सदृश्य यह कंकाल-सी देह। बोलो, नियति ने तुम्हें यौवन का उपहार दिया है, उसका तिरस्कार करोगी ?"

—शत्रु से प्रेम

रस, भाषा और चरित्र

सामाजिक समस्याप्रधान नाटकों की भाषा सरल, नित्य के व्यवहार में आने वाली, आडम्बरविहीन सीधी-सादी है। कथोपकथन संक्षिप्त, मर्मस्पर्शी, वाक्‌वैदग्ध्ययुक्त और पात्रों की चारित्रिकता प्रकट करनेवाले हैं। अकबर के द्वारा भी ऐसी भाषा का व्यवहार कराया गया है, जो हिन्दुओं के सम्पर्क में आकर वह बोल सकता था। यदि अकबर मस्तक पर हिन्दुओं का तिलक लगा सकता है और सूर्य का पूजन कर सकता है, तो वह हिन्दी भी अच्छी बोल सकता है।

"प्रसाद" से प्रभावित पौराणिक-सांस्कृतिक एकांकियों में गानों का भी प्रयोग है। ये गाने संक्षिप्त हैं। एकांकियों के छोटे कलेवर के अनुसार इन्हें छोटा रखा गया है। इनसे एकांकी के वातावरण में रस सृष्टि की गई है।

मैणवालजी यथार्थवादी एकांकीकार हैं, जिनका यथार्थ-वाद मनुष्य की सहज बौद्धिक प्रकृति पर आश्रित है। रोमांस और झूठी भावुकता के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं। पश्चिम के एकांकियों से जो बौद्धिक उत्तेजना हिन्दी में आई है, उसका प्रभाव इनके सामाजिक एकांकियों पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

शॉ का प्रभाव इन नाटकों पर कई रूपों में पड़ा है। प्रथम ये नाटक घटना-बहुल या पात्र-बहुल न होकर विचार

और समस्या नाट्य हैं । ये बौद्धिक चिंतन के मंथन हैं । द्वितीय, उनकी शैली (पौराणिक नाटकों को छोड़कर) यथार्थवाद की है । शॉ की भाँति कहीं-कहीं व्यंग्य और विदग्धता भी है । सामाजिक नाटक आधुनिक समस्याओं के प्रतिबिम्ब हैं । उनकी स्वाभाविकता और यथार्थवाद हमारे हृदय को स्पर्श करते हैं ।

आपके एकांकी अनेक दृश्यों से बोझिल न होकर एक बड़े दृश्य में ही सब कुछ प्रस्तुत कर देते हैं । इनमें तीव्र सम्वेदना द्वारा प्रभाव में पूर्ण ऋजुता की सृष्टि की गई है । कई दृश्यवाले तथा अधिक पात्रों वाले लम्बे एकांकियों से प्रारम्भ कर मैणवालजी ने अपनी एकांकी-कला का विकास कर एक दृश्य वाले छोटे-छोटे मौलिक एकांकियों की सृष्टि की है । छोटे, मनोवैज्ञानिक और चरित्र-चित्रण-प्रधान नाटकों की सृष्टि इनकी विशेषता है ।

मानिनी गोपा

पात्र-परिचय

स्त्री-पात्र

१. यशोधरा	(कपिलवस्तुके राजकुमार की धर्मपत्नी)
२. गौतमी	(यशोधरा की सेविका)

पुरुष-पात्र

१. शुद्धोधन	(कपिलवस्तु के महाराज)
२. गौतम बुद्ध	(कपिलवस्तु के राजकुमार)
३. राहुल	(गौतम बुद्ध के पुत्र)

मानिनी गोपा

प्रथम दृश्य

[कपिलवस्तु के सुनहरे अन्तःपुर में वियोगिनी यशोधरा एकान्त में बैठी हुई अपनी मनोव्यथा व्यक्त कर रही है।]

यशोधरा—(स्वतः) देव ! यह गृह-भार कब तक सहन करती रहूँ ? अब तो राहुल भी कुछ बड़ा हो गया है—नित्य विचित्र प्रश्न उपस्थित करता है। उसे मैं क्या-क्या बताती रहूँ ? यदि आपको नाता जोड़ कर तोड़ना ही था, तो मुझे स्पष्ट कह देते। अचेत शय्या पर सोते हुए स्त्री-पुत्र को छोड़ कर सहसा चले गये। बस, यही सब से बड़ा पश्चात्ताप है।

(सहसा गौतमी का प्रवेश)

गौतमी—मिल गया, मिल गया, मिल गया....।

यशोधरा—क्या मिल गया, गौतमी ?

गौतमी—सन्धान !

यशोधरा—किसका सन्धान....?

गौतमी—जिनकी याद में आप सदा तड़फा करती हैं,

उन्हीं का सन्धान आज मिल गया। अनेकों सिद्धियाँ आज उनके चरणों पर प्रणत हैं। राजकुमार सिद्धार्थ अब आनन्दाग्र-गामी भगवान् शुद्ध बुद्ध हैं।

यशोधरा—गौतमी, यह कौनसा सन्देश सुना रही हो ?

गौतमी—मगध से लौटे हुए कुछ व्यवसायियों ने ही महाराज को यह सन्देश सुनाया है, वे स्वयं भगवान् के मुख से उपदेश सुनकर लौटे हैं।

यशोधरा—इन बातों से मुझे कुछ गर्व-सा हो रहा है, पर यह तो बताओ गौतमी ! उनके करुण-धर्म-संघ के शरण में गोपा के लिए भी कहीं स्थान होगा या नहीं ? **(कंठ रुँध कर अश्रुपात)**।

(हर्ष-विह्वल दौड़ते हुए राहुल का एकाएक प्रवेश)

राहुल—माँ ! माँ !! पिताजी का पता लग गया। हमारे सब दुःख दूर हो गये। अब मेरी माँ कभी न रोयेगी। अरे, तू तो अब भी रोती है ?

यशोधरा—एक अबोध बालक नारी-हृदय के रहस्य को समझने की व्यर्थ चेष्टा कर रहा है। बेटा ! तू ही बता और क्या करूँ ?

राहुल—बता दूँ ? सच ! मां ! पिताजी को बुला क्यों नहीं लाती ? मुझे भी अपने संग ले चल। वह देख, महाराज भी इधर ही आ रहे हैं। मैं तो चला, अपना सामान तय्यार कर लूँ। गौतमी क्या आप मेरी सहायता करेंगी ?

(राहुल और गौतमी का प्रस्थान और उसी क्षण महाराज शुद्धोधन का प्रवेश)

शुद्धोधन—बेटी ! गोपा !! (**यशोधरा चरणों में नत होती है**) जीवो बेटी ! तेरा सौभाग्य अक्षय हो। गोपा और गौतम का नाम भी इस जगत् में सदा अमर रहे। बेटी ! अब विलम्ब क्यों ? मगध यहाँ से अधिक दूर नहीं है—मैंने सब आयोजन कर लिया है और फिर उसे प्राप्त करने के लिए तो हम सब इस सृष्टि के इस छोर से लेकर उस छोर तक जा सकते हैं। अरे, गोपा मौन है !

यशोधरा—(**रोते हुए**) पिताजी ! क्षमा—मैं विवश हूँ। मुझे वे यहाँ छोड़ गए हैं—उनकी कोई आज्ञा....।

शुद्धोधन—बेटी ! क्या हमें इतना भी अधिकार नहीं है।

यशोधरा—पिताजी ! गोपा गौतम की है। पराई वस्तु पर मुझे क्या अधिकार है ?

शुद्धोधन—क्या नारी को इतना दर्प और साहस शोभा देगा, बेटी ?

यशोधरा—वे मुझे और मेरे दूध-मुँहे बालक को अकेला छोड़ कर गए हैं, मैंने उन्हें कभी नहीं छोड़ा। जब कभी उन्हें इष्ट होगा स्वयं आकर चरणों में स्थान देंगे या मुझे बुला लेंगे।

शुद्धोधन—किन्तु, वहाँ चलने में कौनसी बाधा है ?

यशोधरा—कोई बाधा नहीं, कोई बाधा नहीं, यही

तो एक उलझन है। आज मुझ हतभागिनी को कहीं भी जाने के लिए कोई भी नहीं रोक सकता। फिर भी कर्तव्य मुझे इच्छा रहते हुए भी जाने से रोक रहा है। यदि आज तक कहीं मैं जा पाती, तो गौतम के लिए गोपा कभी की यहाँ से सम्पूर्ण पृथ्वी को छानने के लिए चली जाती। मैं सिंहिनी बन कर वन-वन में गर्जती, योगिनी बन कर कन्दराओं में भटकती और न जाने क्या-क्या बन कर कहाँ-कहाँ चली जाती? पर, हाय! आज नदी के तट पर पड़ी रह कर भी मैं प्यासी ही हूँ। पिताजी! पिताजी!! मैं कहाँ जाऊँ? वहाँ जाने से क्या होगा? मैं लुट चुकी।

(करुण उत्तेजना से मूर्च्छा और शुद्धोधन का रोते हुए यशोधरा को सम्भालना)

यवनिका-पतन

द्वितीय दृश्य

(कपिलवस्तु के राजमहलों में राजकुमार राहुल और उसकी माता यशोधरा बातचीत कर रहे हैं)।

राहुल—माँ!

यशोधरा—बोल बेटा!

राहुल—यह दिन भी व्यर्थ प्रतीक्षा में चला गया।

पिताजी का कोई भी नया समाचार नहीं मिला। हृदय से चाहता हूँ कि किसी प्रकार मैं पिताजी के पास चला जाऊँ, पर तुझे यहाँ छोड़ कर कैसे जाऊँ?

यशोधरा—बेटा! क्या अपने पिताजी के समान तू भी मुझ दुखिया को यहाँ अकेली छोड़ कर चला जायगा? कई राजदूत और कपिलनगर-निवासी उन्हें बुलाने के लिए यहाँ से जा चुके हैं। आश्चर्य तो यह है कि उनमें से एक भी नहीं लौट कर आया!

राहुल—मेरा विवाह कर दे, माँ! अपनी बहू को अपने पास रख कर तू अधिक सुखी होगी।

यशोधरा—वाह रे कल्पना! तू और तेरे पिताजी जगत् के कल्याणार्थ स्वतन्त्र शुद्ध बुद्ध होकर सर्वत्र विचरण करो और तेरी बहू भी मेरे समान इन अट्टालिकाओं में बन्द रह कर सड़ती रहे, तड़पती रहे। क्या यह नारी के प्रति दूसरा क्रूर कर्म न होगा? यह भी एक विडम्बना है।

राहुल—(**चकित होकर**) अरे, सचमुच यह तो एक नई विपत्ति होगी—इसका तो मुझे ध्यान ही नहीं रहा।

यशोधरा—राहुल! पुरुष हो न तुम भी, पुरुष स्त्रियों का ध्यान कब रखते हैं?

राहुल—माँ, राहुल तेरे चरणों के हाथ लगा कर प्रतिज्ञा करता है कि वह कभी विवाह न करेगा।

यशोधरा—राम! राम!! छोकरे, तूने यह क्या

किया ? दुखी को अधिक सताना अच्छा नहीं; राहुल ! (रोती है)

राहुल—माँ, माँ, क्षमा कर दे माँ ! मैं क्या करूँ ? मेरी कोई भी युक्ति काम नहीं देती। माँ ! तेरा हठ अडिग है, पर माँ, तू एक सुन्दर सुयोग खो चुकी है।

यशोधरा—(**दृढ़ता से**) राहुल ! सुयोग का भी एक योग होता है—भोग तो सभी को भोगने पड़ते हैं।

(सहसा पुकारती हुई गौतमी का प्रवेश)

गौतमी—आगए ! आगए !! आगए !!!

राहुल—कौन आगए ?

गौतमी—जिनकी हम प्रतीक्षा कर रहे थे, वे ही आज स्वयं आगए। भव-भव के भगवान् आगए !

यशोधरा—गौतमी !

गौतमी—महारानी ! क्या अब भी नहीं उठोगी ?

यशोधरा—उठ कर मैं कहाँ जाऊँ ? गौतमी ! मुझे वे जहाँ छोड़ गए थे मैं वहाँ ही तो बैठी हूँ। इतनी दूर चल कर आने वाले क्या दो पग और नहीं चल सकते ?

गौतमी—महारानी ! . . . . ।

यशोधरा—गौतमी, जो कुछ बच रहा था, आज वह भी समाप्त होने जा रहा है। वे भिक्षुक बन कर घर लौटे हैं ?

(दोनों हाथों से मुँह छिपा कर रोती है)

गौतमी--महारानी ! भगवान् इसी अजिर में पधार आये हैं, अब तो उठो।

(यशोधरा साहस करके उठना चाहती है पर लड़खड़ाती है और गौतमी महारानी को सम्भालती है। एकाएक बुद्ध का प्रवेश)

राहुल--माँ ! पिताजी आगए !

(राहुल भगवान बुद्ध के चरणों में नत होता है और यशोधरा चित्र-सी खड़ी रहती है)

गौतमबुद्ध--(हाथ से यशोधरा की ओर संकेत करते हुए) इस हाड़-मांस के सूखे-से शरीर में कितना अथाह पानी है ?

राहुल--भगवान्, आपको सकल सिद्धियाँ मिल गईं, पर मेरी माँ को क्या मिला ?

गौतमबुद्ध--(हँस कर) राहुल-सा पुत्र-रत्न तो इसने पहिले ही प्राप्त कर लिया और आज स्वयं अमिताभ इसके कक्ष में आया है। अरे ! रोती है। गोपे ! दीन न हो। नारी कभी हीन नहीं है। गोपा का मान गौतम से भी बड़ा है। निर्दयी सिद्धार्थ शाक्य तुझे अकेली छोड़ कर चला गया, उसे क्षमा कर दो। क्षमा से बढ़ कर कोई अन्य दण्ड नहीं है। मेरे लिए राजा-रंक सभी समान हैं, मैं किस की भिक्षा न लूं ? गोपा के द्वार पर आज गौतम भिक्षा

माँगने खड़ा है। क्या महारानी के द्वार से एक भिक्षुक खाली हाथ लौटेगा?

यशोधरा—नाथ ! नाथ !! अब नहीं देखा जाता—**(पछाड़ खा कर गौतम के चरणों पर गिरती है और गौतम उसे उठा कर सान्त्वना देते हैं)**

गौतमबुद्ध—गोपे ! तू जीत गई। सर्वत्र शान्ति हो ! भिक्षुक को भिक्षा मिलनी ही चाहिए।

यशोधरा—**(रोती हुई गोपा राहुल का हाथ पकड़ कर गौतम के सामने करती है)** गोपा के पास राहुल से बढ़ कर अन्य कोई वस्तु नहीं, इसे सम्भालो भिक्षुराज !

गौतमबुद्ध—**(राहुल के मस्तक पर हाथ रख कर)** धन्य गोपे ! बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।

सब मिल कर—बुद्धं शरणं गच्छामि,
धर्मं शरणं गच्छामि,
संघं शरणं गच्छामि।

पटाक्षेप

अश्रद्धालु मानव

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१. मनु (सृष्टि के प्रथम मानव)

स्त्री-पात्र

२. श्रद्धा (मनु की प्रथम धर्मपत्नी)

अश्रद्धालु मानव

प्रथम दृश्य

[अन्त में महाप्रलय की कालरात्रि भी जल में अन्तर्निहित हो गई। प्रकृति का वह विवर्ण एवं त्रस्त मुख फिर से हँसने लगा। धीरे-धीरे धरातल से हिम-आच्छादन हट गया। शीतल जल से अपना मुख धोकर अलसाई वनस्पतियाँ जग उठीं। पवन मृदु साँस लेने लगा। उषा अपने सुनहले तीर बरसाती हुई विजय-लक्ष्मी-सी उदित हुई। हिम गिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठे हुए इस सृष्टि के प्रथम पुरुष ने महाप्रलय के बाद प्रकृति में सहसा परिवर्तन पाया। प्राकृतिक परिवर्तन के साथ ही आदि पुरुष ने स्वयं के हृदय में भी परिवर्तन देखा। मनु को विजन विश्व का अति रंजित नव एकांत दृष्टिगोचर हुआ। आशा और काम की अनेकों भावनाएँ उनके हृदय में मंथन करने लगीं और जीवन के सम्बन्ध में पुनः श्रद्धा स्थापित हो गई]।

मनु—(स्वतः) न जाने मैं कौन था, कौन हूँ और कहाँ जाऊँगा? प्रेम हूँ, वेदना हूँ, माया हूँ, न जाने क्या हूँ? कुछ भी स्मरण नहीं होता। हाँ, केवल मैं यह जानता हूँ

कि मैं कुछ खोज रहा हूँ। यदि वह अचानक पड़ा हुआ मिल गया तो उसे ठुकराऊँगा नहीं, अपना लूँगा। हाँ, कुछ स्मरण होता है—मैं देव सृष्टि का एक-मात्र अवशेष हूँ और इस नूतन सृष्टि का प्रथम मानव हूँ। मैं कुछ सोच-समझ सकता हूँ, यही मेरी विशेषता है।

[एकाएक मनु ने प्रथम बार अन्य मानव की मधुर वाणी सुनी। एक कोमलांगी स्त्री मसृण गांधार देश के नील रोम वाले मेघों के चर्म से अपने सुन्दर शरीर को ढके हुए, मनु से बातें करने लगीं]

श्रद्धा—प्रभा की धारा से निर्जन का अभिषेक करने वाले महापुरुष! तुम कौन हो?

मनु—हे विश्व की करुण कामना-मूर्ति, मैं आकाश और पृथ्वी के बीच एक निरुपाय जीवन-रहस्य बन गया हूँ। उल्का के समान दिनरात जला करता हूँ, शून्य में भटकता और असहाय-सा फिरता हूँ। विस्मृति का एक अचेत स्तूप, ज्योति का धुँधला-सा प्रतिबिम्ब और सफलता का एक संकलित विलम्ब बन गया हूँ। हृदय के कोमल कवि की कान्त कल्पना! तुम कौन हो?

श्रद्धा—मेरा निवासस्थान गंधर्व देश में है। ललित कला से मुझे प्रेम है। घूमने का अभ्यास है। प्रायः हिमालय के गगनचुम्बी शिखरों को देख कर मैं अचम्भा किया करती हूँ। आह! पृथ्वीमाता की यह भयभीत सिकुड़न कैसी है?

एक दिन सहसा अपार एवं भयावह समुद्र सर्वत्र धरा पर छा गया और यह जीवन इस गगनचुम्बी हिमालय पर अकेला रह गया। इधर कुछ बलि का अन्न बिखरा हुआ देख कर यहाँ चली आई। तपस्वी! तुम इतने क्लान्त क्यों हो? वेदना का यह कैसा वेग है? ओह! तुम कितने अधिक हताश हो? सच बताओ, यह उद्वेग क्यों? स्मरण रहे! दुःख की पिछली रजनी के बीच ही सुखों का नवल प्रभात विकसित होता है।

मनु—उषा की प्रथम कान्त लेखा! तुम्हारे मधुर मारुत-से ये उच्छ्वास मेरे मानस में नवोत्साह की अबाध तरंग उठाते हैं। किन्तु, जीवन कितना निरुपाय है? क्या जीवन सफलता का एक कल्पित गृह नहीं है? प्रायः जीवन का परिणाम निराशा ही है।

श्रद्धा—अरे, तुम इतने अधीर हो गए? जीवन के उस दाव को भी हार बैठे, जिसे वीर मर कर जीतते हैं। देखते नहीं, आशा का आह्लाद तरल आकांक्षाओं से भरा पड़ा है। क्या कभी बासी फूल प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे? तुम और यह विस्तृत भू-खण्ड कर्म के भोग हो, और भोग में कर्म है। यही जड़ का चेतन आनन्द है। तपस्वी, तुम आकर्षण-विहीन होकर आत्म-विस्तार नहीं कर सके। अकेले और असहाय बन कर तुम किस प्रकार यज्ञ करोगे? तुच्छ विचार....? मानव!

अपने ही बोझ से दबे जा रहे हो, कहीं भी अवलम्ब नहीं खोजते। क्या तुम्हारी सहचरी बन कर मैं उऋण हो सकूँगी? जानते हो, मैं क्या दूँगी? दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास—सब कुछ ले लो, मैं सर्वस्व लुटा दूँगी। मेरे हृदय के स्वच्छ द्वार तुम्हारे लिए सदा खुले रहेंगे।

मनु—विश्व-विमोहिनी! तुम मुझे कहाँ ले जा रही हो? तुम्हारी बातें मुझे मीठी क्यों लग रही हैं?

मनु—अविश्वासी दिव्य पुरुष! विश्वासी मानव बनो—श्रद्धा ही तो जीवन है। चिरंतन संसृति के मूल रहस्य बनो, तुम्हीं से तो वह अमर बेल फैलेगी, जिसकी सौरभ से समस्त विश्व भर जायगा। और, हम मिल कर सदा सुमनों के सुन्दर खेल खेलेंगे।

मनु—यह कैसे होगा?

श्रद्धा—अरे, अमृत-संतान हो, डरो मत। देव-असफलताओं के ध्वंस का उपकरण जुटा कर मन का चेतन राज्य स्थापित करो। शक्तिशाली हो, विजयी बनो। शक्ति के विद्युत्कण सर्वत्र व्यस्त बिखरे पड़े हैं, उनका समन्वय करके मानवता को विजयिनी बनाओ। विधाता की कल्याणी सृष्टि इस भूतल पर पूर्ण रूप से सफल होगी।

मनु—महा शक्ति! तुम्हें मैं किस नाम से सम्बोधित करूँ?

श्रद्धा——गन्धर्व देश में मुझे श्रद्धा कहते हैं।

मनु——(श्रद्धा के स्कन्धों पर हाथ रख कर) श्रद्धे ! मानवता की जननी !! आ, मैं तेरा स्वागत करता हूँ।

(यवनिका-पतन)

द्वितीय दृश्य

[अर्द्ध रात्रि के बाद मनु स्वप्नावस्था में दृष्टिगोचर होते हैं और बड़-बड़ाते हुए कुछ कहते-से दिखाई पड़ते हैं]

मनु——(स्वप्नावस्था में) यह क्या हुआ ? प्रकृति के संग मेरे जीवन में भी मधु-मय वसन्त हिलोरें ले रहा है। मनु, देखता नहीं, मतवाली कोयल कूहक रही है । अरे ! अब तो अलसाई कलियों ने भी अपनी आँखें खोल दीं। वह देखो, मयूर नाच रहे हैं और हंस-हंसिनी के पीछे क्षितिज के उस पार उड़ता ही जा रहा है। कमल के समान मेरे हृदय में भी सुगन्धित मधु की कई जालियाँ बनती ही जा रही हैं। ये मधुधारा की जालियाँ मेरे मन-मधुकर के लिए प्रेममय जंजाल बन गई हैं। क्या इस सुन्दरता के पर्दे के पीछे और भी कोई अन्य वस्तु है ? मेरी अक्षय निधि ! तुम क्या हो ? क्या मैं तुम्हें मेरे प्राणों के धागों की उलझन की सुलझन का मान समझूं ? कुछ भी हो, जीवन के इस

मधुर भार को मैं अब न सम्भाल सकूंगा। कितना कोमल कौशल है ? क्या यह सुषमा दुर्भेद बन जायगी ? मेरी इन्द्रियों की चेतना क्या मेरी ही पराजय है ? तुम कौन हो ? कहो क्या कहना चाहते हो ?

(मनु स्वप्नावस्था में एक अदृश्य व्यक्ति से बातें करते हैं)

आकाशवाणी—मैं कामदेव हूँ, जानते हो मुझे ? हा...हा...हा... **(हँसते हुए)**

मनु—कामदेव !

आकाश-वाणी—हाँ देव ! नहीं, नहीं, प्रथम मानव !! मैं प्यासा हूँ, प्यास से तड़प रहा हूँ।

मनु—महाप्रलय के अथाह जल-समुद्र से भी तुम्हारी अग्नि शान्त नहीं हुई ? झंझा के तीव्र झटके, दिग्दाहों से उठे हुए धूम, पंचभूत का भैरव मिश्रण और शंपाओं के शकल-निपात भी क्या तुम्हें नष्ट नहीं कर सके ?

आकाश-वाणी—मानव ! देवों की सृष्टि का अन्त हो गया है। स्मरण है कुछ ! समस्त देवताओं के साथ तुम भी मेरी ही उपासना करते थे। मेरा संकेत-मात्र ही उनके लिए सर्वोच्च विधान था। आकर्षण बन कर जो देव बालाओं के साथ हँसा करती थी, वह अनादि वासना रति ही तो थी।

आज, न तो वे अमर देवगण ही हैं और न उनका विलास-विनोद ही रहा है। काल के प्रत्यावर्तन से मैं अमूर्त होकर

भटक रहा हूँ। उस विशाल देव-गौरव का एक संस्मरण-मात्र रह गया हूँ। यह विश्व कर्म की रंगस्थली है, मनोहर कृतियों का नीड़ है। जिसमें जितना बल है, उसीके अनुसार वह यहाँ कर्म करता है।

(प्राची में गुलाली खिलती है और खेलती हुई हेमा-भरश्मि के साथ महात्मा मनु की आँखें खुलती हैं। स्वप्न-भंग होता है और मनु चैतन्यावस्था में दृष्टिगोचर होते हैं)

मनु—कहाँ गए, किधर हो? कामदेव! अनंग!! अमूर्त!!! कोई नहीं....?

(समीप ही एक उछलते हुए कोमल मृगशावक के साथ श्रद्धा मनु के सम्मुख आती हुई दिखाई पड़ती है)।

श्रद्धा—मानव! क्या ध्यान ही लगाते रहोगे?

मनु—अतिथि! कहाँ थे तुम?

श्रद्धा—**(हँस कर)** अतिथि जो हूँ, अधिक परिचय की क्या आवश्यकता पड़ गई, मानव! हाँ, पर, आज मेरे लिए इतने उद्विग्न क्यों हो?

मनु—श्रद्धे, मैं आज तुम्हारे सौंदर्य में प्रथम बार अपनापन देख रहा हूँ।

श्रद्धा—विश्वास करते हो?

मनु—हाँ, श्रद्धा!

श्रद्धा—तो, चलो। उस ऊँचे शिखर का व्यस्त व्योम-

चुम्बन देख आवें। इस कौमुदी में प्रकृति का कैसा स्वप्न-शासन है ?

(दोनों का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

तृतीय-दृश्य

(केतकी गर्भ-सा पीले मुंह वाली, आँखों में आलस भरा स्नेह लिए हुए गर्भवती श्रद्धा अपनी निकुंज में बैठी हुई बीजों का संग्रह कर रही है। कभी-कभी करुणगीत छेड़ देती है और कभी अपने मनसे ही बातें करती है)

श्रद्धा—(स्वतः) पल भर की उस चंचलता ने हृदय का सारा स्वाधिकार खो दिया—सर्वस्व दे दिया। मनु को मृगया के अतिरिक्त कोई काम ही नहीं है। असुरों की संगत में पड़ कर उनको पशुवलि, यज्ञ और सोम-सुधा का चाव लग रहा है। हिंसा-सुख और रक्त मुख में लग गए हैं। अब उन्हें श्रद्धा का सरल विनोद नहीं रुचता। यह सब मेरा ही अपराध है, पर अब क्या....? (दीर्घ निश्वास)

[मृगया से थक कर लौटे हुए मनु का गुफा-द्वार पर प्रवेश। मृग, आयुध, प्रत्यंचा, शृंग, तीर आदि आखेट के

उपकरणों को गुफा के बाहर ही पटक कर मनु शिथिल होकर बैठ जाते हैं, मानो गुफा में उनका कोई भी नहीं है। अन्त में आहट पाकर श्रद्धा गुफा के बाहर आती है। आज उसके पयोधर मातृत्व बोझ से झुक रहे हैं, और कोमल काले ऊनों की नव पट्टिका से बँधे हैं। हलका बना हुआ नील नवल वसन कटि में लिपट रहा है। मनु की और श्रद्धा की चार आँखें होती हैं और दोनों एक दूसरे की ओर साधिकार देखते हैं। अन्त में श्रद्धा मनु के हृदय के भावों को जान कर कुछ-कुछ मुस्करा उठती है]।

श्रद्धा—मानव ! दिन भर से कहाँ भटक रहे थे ? यह हिंसा कितनी प्यारी हो गई, जिसने देह-गेह की सुध भी भुला दी। देखते नहीं, दिन ढल गया है। नीड़ों में विहंग युगल अपने शिशुओं को चूम रहे हैं। उनके घर में कोलाहल है, मेरी गुफा सूनी पड़ी है। तुम्हारे घर में ऐसी कौनसी कमी आ गई, जो तुम अन्य स्थानों में भटकते फिरते हो ?

मनु—श्रद्धे ! तुमको कुछ कमी नहीं, पर मैं तो अभाव देख रहा हूँ। पुरुष चिर मुक्त है, वह कब इतने निरीह अवरुद्ध श्वास लेगा ? (**दीर्घ निःश्वास के साथ**) और .... वह आकुलता अब कहाँ, जिसमें मैं सब कुछ भूल जाऊँ ? आशा के कोमल तंतु के सदृश्य तुम तो सदा तकली में ही भूला करती हो ? क्या तुम्हें शावक के मृदुल चर्म नहीं

मिलते ? तुम बीज क्यों बीनती हो, यह सब कुछ तुम किसके लिए कर रही हो, क्या इसमें भी कोई रहस्य है ?

श्रद्धा—प्रिय ! हिंसक से रक्षा करने में शस्त्रों का प्रयोग होना चाहिए। जो सहेतु पाले जाते हैं, वे द्रोह करने के स्थल कहाँ हैं ?

मनु—हा-हा-हा **(घृणित हँसी हँस कर)** भोली है रे श्रद्धा ! स्वर्गीय सुखों पर होनेवाले प्रलय-नृत्य को मैं अभी भूला नहीं। फिर नाश और चिर निद्रा है। पर, यह प्रशान्त मंगल-अभिलाषा तुम्हारे हृदय में क्यों जाग रही है ? यह स्नेह इतना क्यों संचित हो रहा है ? श्रद्धा ! तुम्हारा यह विशाल दुलार मुझ तक ही सीमित हो। तुम्हें केवल मेरी ही चिंता करनी होगी।

श्रद्धा—**(मनु का हाथ पकड़ कर गुफा में ले जाती है। गुफा में कोमल लतिकाओं की डालें सघन कुंज बनाती हैं। कुंज में वेतसी लता का एक सुन्दर झूला पड़ा हुआ है और धरातल पर चिकने सुमनों की एक शय्या-सी बिछी है। मनु यह गृह-लक्ष्मी का गृह-विधान चुपचाप चकित होकर देख रहे हैं)**

श्रद्धा—**(हँस कर)** देखा, घर तो बन गया है, पर अभी यह घर सूना है। इस घर में कलरव करने वाले प्राणी की सृष्टि अभी नहीं हुई। जब तुम मुझे छोड़ कर दूर चले जाओगे, तब मेरा यह लघु विश्व सूना न रहेगा।

मैं उसके लिए फूलों के रस का मृदुल फेन सर्वत्र बिछाऊँगी। झूले पर उसे झुलाऊँगी और दुलार से उसका वदन चूम लूँगी। वह अपने कोमल बालों को लहराता हुआ मृदु मलय-सा आवेगा। अपनी मीठी रसना से वह कई प्रकार के मधुर बोल बोलेगा। उस समय मेरी आँखों का सब पानी स्निग्ध अमृत-सा बन जायगा।

मनु—**(ईर्ष्या से)** तब तुम लतिका-सी फूल उठोगी और मैं कस्तूरी कुरंग बन कर सर्वत्र भटकता फिरूँगा? श्रद्धा, यह जलन मैं सहन नहीं कर सकता, मुझे मेरा ममत्व चाहिए? यह द्वैत भाव तो प्रेम बाँटने का प्रकार है। क्या मैं भिक्षुक हूँ? मायाविनी! मैं तुम्हारा दान अस्वीकार करता हूँ। मनु की परवशता को मैं महा दुःख मानता हूँ। तुम अपने सुख से सुखी रहो, मुझे तो दुखी ही, स्वतंत्र रहने दो। तुम्हें तुम्हारी कुसुमकुंज सफल हो, मुझे तो काँटे ही चाहिएँ।

श्रद्धा—किन्तु मानव! ....!!

मनु—पुरुष बंधन नहीं चाहता। लो, अभी चला...।

(मनु का तीर की तरह प्रस्थान और श्रद्धा का विलाप)

श्रद्धा—**(रोते हुए)** रुक जाओ, रुक जाओ! क्रूर हृदयी पुरुष, मुझे इस दशा में अकेली छोड़ कर कहाँ जाते हो? अरे निर्मोही! ओ दुष्ट!! मेरी एक बात तो और सुन....।

(मनु का अदृश्य होना और श्रद्धा का चक्कर खाकर गिरना)

पटाक्षेप

सन्त-परीक्षा

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१—नामदेव (महाराष्ट्र के एक संत)

२—ज्ञानदेव (गोरखपंथी योगी)

३—वज्रयानी („)

४—खेचर नाथ („)

स्त्री-पात्र

१—मुक्ता (ज्ञानदेव की बहिन)

सन्त-परीक्षा

प्रथम दृश्य

[*महाराष्ट्र प्रदेश में पंढरपुर के बिठोबा (विष्णु) भगवान् के प्राचीन मन्दिर में सन्त नामदेव प्रतिमा के सम्मुख बैठे हुए भगवद्भजन कर रहे हैं। समय : प्रातःकाल]।

भजन

नामदेवः—

अंबरीष को दियो अभय पद, राज विभीषण अधिक करयो।
नव निधि ठाकुर दई सुदामहि, ध्रुव जो अटल अजहुँ न टरयो॥
भगत हेतु मारयो हरिनाकुस, नृसिंह रूप ह्वै देह धरयो।
नामा कहै भगति-बस केसव, अजहुँ बलि के द्वार खरो॥

---

*महाराष्ट्र देश में नामदेव का जन्म-काल शक सं० ११९२ और मृत्यु-काल शक संवत् १२७२ प्रसिद्ध है। ये दक्षिण के निरसी बमनी (सतारा जिला) के दरजी थे। पीछे पंढरपुर के बिठोबा के मन्दिर में भगवद्भजन करते हुए अपने दिन बिताते थे। ('हिन्दी साहित्य का इतिहास' श्री रामचन्द्र शुक्ल)

[भँगवाँ वस्त्र धारण किए हुए, ललाट पर भस्म का तिलक लगाये और हाथ में खप्पर और त्रिशूल लटकाए हुए एक गोरांगी तरुण योगिनी का एकाएक प्रवेश]

मुक्ता—नामा ! ओ नामा !! क्या भजन ही गाते रहोगे ?

नामदेव—कौन ? योगीराज ज्ञानदेव की बहिन योगिनी मुक्ता, आज यहाँ कैसे ?

मुक्ता—नामदेव ! तुम सीधे-सादे सगुण भक्तिमार्ग पर चले जा रहे हो। तुम्हारी भक्ति अभी एकांगी है। सच पूछो तो अंतर्मुख साधना द्वारा सर्वव्यापक निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार ही मोक्ष का मार्ग है।

भजन

नामदेव—

धनि धनि मेघा-रोमावलि, धनि धनि कृष्ण ओढ़े काँवली।
धनि धनि तू माता देवकी, जिहि गृह रमैया कँवलापती॥
धनि धनि बनखँड बृंदावना, जहँ खेलै श्री नारायना।
बेन बजावै, गोधन चारै, नामे का स्वामि आनन्द करै॥

योग-माया ! सगुणोपासक भक्त भगवान् के सगुण और निर्गुण दोनों रूप मानता है, पर भक्ति के लिए सगुण रूप ही स्वीकार करता है; केवल निर्गुण रूप को ग्रहण

करना नितान्त ज्ञान-मार्गियों का काम है । मैं मेरे बिठोबा को कैसे भुला दूं ?

मुक्ता---महात्माजी ! आप अपने इष्टदेव को नहीं भुला सकते और मैं अपने नामा को कैसे भूल सकती हूँ ? तुम बिठोबा की ज्योति जगाते रहो और नामा के प्रति मेरा सहज स्नेह उस जगमगाती ज्योति को कभी न बुझने देगा।

नामदेव---मुक्ता ! तू एक बाल ब्रह्मचारिणी होकर ये कैसी बातें करती है ?

मुक्ता---नामदेव, मैं अपने योग और ब्रह्मचर्य को आज बिठोबा के मन्दिर में नामा के चरणों में चढ़ाने आई हूँ--- तुम अपने इष्ट-देव की पूजन करते रहो, मैं नामा की सेवा में शेष जीवन व्यतीत करती रहूँगी। मेरी सेवा का तुम्हें कोई मूल्य न देना होगा।

नामदेव---(हँस कर) यदि ऐसा ही निःस्वार्थ भाव है, तो चण्डिके ! अपना उग्र रूप परित्याग कर भगवान् बिठोबा की शरण में क्यों नहीं चली आती ? नामा जैसे निम्नकोटि के मनुष्य की सेवा करने से तुझे क्या प्राप्त होगा ?

मुक्ता---क्रूर हृदयी पुरुष ! भयंकर योगिनी और बाल ब्रह्मचारिणी होने के साथ ही मैं एक नारी भी हूँ।

नामदेव---क्षमा करो बहिन, तू मेरे मित्र, मेरे भाई, ज्ञानदेव की बहिन है और इसके अतिरिक्त मेरे शरीर

पर केवल बिठोबा का ही अधिकार हो सकता है, अन्य का नहीं।

मुक्ता—नामदेव ! मैं तुझे भस्म कर दूँगी।

नामदेव—कोई चिन्ता नहीं। अरे सोमदेव ! ओ सोम ! भगवान् के लिए दूध नहीं लाया। बिठोबा भूखे हैं।

मुक्ता—ढोंगी साधु, तू भूखा है या तेरे भगवान् ?

(सोमदेव दूध का कटोरा नामदेव के हाथ में सौंपता है। नामदेव आँखें मूँद कर कटोरा बिठोबा की प्रतिमा की ओर बढ़ाते हैं। मुक्ता लपक कर कटोरा छीनने का प्रयास करती है, किन्तु उसका हाथ आगे बढ़ने में असमर्थ हो जाता है और मूर्ति की ओर से एक ध्वनि उठती है)

बिठोबा—नामदेव ! दूध बहुत मीठा है। घबराओ मत, हम तुम्हारे साथ हैं। (दूध से भरा हुआ कटोरा एक क्षण में खाली होता है। मुक्ता बड़बड़ाती हुई वहाँ से अदृश्य होती है)।

यवनिका-पतन

द्वितीय दृश्य

[गोरखनाथ की परम्परा के नाथ-पंथी साधु ज्ञानदेव एक शिलाखण्ड पर आचार्य की गद्दी पर बैठे हुए

कनफटे योगियों की योगादि क्रियाओं का प्रदर्शन देख रहे हैं]

वज्रयानी—(ज्ञानदेव के सम्मुख मैदान में आकर नमस्कार करता है) जय गोरख !

सम्मिलित ध्वनि—जय गोरख !!

ज्ञानदेव—वज्रयानी ! इस क्रिया में भी तुम उत्तीर्ण हुए। समस्त शरीर की अन्तरंग अँतड़ियों को निकाल कर गंगा-जल से स्वच्छ करके पुनः निश्चित स्थान पर लगा देना एक असाधारण क्रिया है। तुम इस क्रिया में सिद्ध हो। आज से आपका नाम वज्रयानी 'सिद्ध' है। और खेचरनाथ ! आप तो सब योगियों के गुरु हैं। एक सप्ताह तक ब्रह्माण्ड में प्राणवायु को चढ़ा कर एकत्रित रखना आपका ही काम है। आज से आप हमारी योगशाला के प्रबन्धक रहेंगे। योगी भोमदेव के कार्यों से भी हम अत्यधिक प्रसन्न हैं। भोमदेव ! हमें आपके सदृश्य निकट भविष्य में कम से कम ग्यारह कनफटे योगियों की आवश्यकता है, जिनका शरीर वज्र-सा दृढ़ हो। और जो घातक प्रहारों को भी हँसते हुए शरीर पर झेल सकें।

[तीनों शिष्य ज्ञानदेव के चरणों में मस्तक झुकाते हैं। एकाएक घबराई हुई मुक्ता का प्रवेश]

मुक्ता—भ्राता ! भ्राता !! यह सब ढोंग है, आडम्बर है। आज मैंने स्वयं देख लिया।

ज्ञानदेव---चण्डिके ! महाशक्ति !! आज इतनी भयभीत क्यों ?

मुक्ता---गोरख के नाम पर आप लोग दुनिया को कहाँ ले जा रहे हैं ? अर्थशून्य बाहरी विधि-विधान, तीर्थाटन, पर्वस्नान आदि की निस्सारता का संस्कार फैलाने का जो कार्य वज्रयानी सिद्धों और नाथ पंथी जोगियों के द्वारा हुआ, यह किस से छिपा है ? तुम्हारा उद्देश्य 'कार्य' को उस तंग गड्ढे से निकाल कर प्रकृत धर्म के खुले क्षेत्र में लाना नहीं है बल्कि उसे सदैव के लिए किनारे ढकेल देना है। सगुण उपासना के महत्व को आज मैंने स्वयं देखा है। निस्वार्थ भक्ति के सम्मुख आज आपकी और मेरी सब यौगिक एवं तान्त्रिक सिद्धियाँ असफल हो गईं।

ज्ञानदेव---कहाँ देखा, क्या देखा है ? मुक्ता, स्पष्ट क्यों नहीं कहती ?

मुक्ता---भ्राता ! नामदेव कौन है ?

ज्ञानदेव---नामदेव मेरा मित्र है, एक सज्जन पुरुष है।

मुक्ता---नहीं, नहीं, नामदेव आपका शत्रु है।

ज्ञानदेव---नामदेव मेरा शत्रु है ! यह क्या कह रही हो, मुक्ता ?

मुक्ता---यदि नामदेव भविष्य में नाथ-पंथानुयायी न बना तो समूचे महाराष्ट्र में ज्ञानदेव प्रभावहीन हो जायंगे

और इसके साथ ही गुरु गोरखनाथ की परम्परा भी पेंदे में बैठ जायगी।

ज्ञानदेव—क्या नामदेव ने कोई नई सम्प्रदाय खड़ी की है ?

मुक्ता—यह सब एकान्त में बताने की बात है ?

ज्ञानदेव—(सब को सम्बोधित करके) अब, हम आज का कार्य-क्रम यहाँ ही स्थगित करते हैं।

(केवल मुक्ता और ज्ञानदेव वहाँ रहते हैं और शेष योगियों का प्रस्थान होता है)

ज्ञानदेव—सच बता, नामदेव ने क्या किया ?

मुक्ता—नामदेव के हाथ से स्वयं विठोबा ने दूध का कटोरा पान किया है। मैंने प्रत्यक्ष देखा है।

ज्ञानदेव—धन्य नामदेव ! आपके समान भक्त को पाकर महाराष्ट्र धनी हो गया।

मुक्ता—नामदेव की इस सिद्धि ने ज्ञानदेव और गोरख-पंथ को जीत लिया है।

ज्ञानदेव—मुक्ता ! अन्तिम विजय विवेक की होगी। नामदेव के पास यदि शुद्ध हृदय है, तो ज्ञानदेव के पास एक विशाल मस्तिष्क है। नामदेव को साध्य होकर गोरख-मत स्वीकार करना होगा। जाओ मुक्त, मुझे एकान्त में इस समस्या पर विचार करने दो।

(मुक्ता का प्रस्थान और ज्ञानदेव का ध्यानावस्था में दृष्टि-गोचर होना।)

यवनिका-पतन

तृतीय दृश्य

[स्थान—गंगा किनारे एक तीर्थ-स्थान। समय : सायंकाल। ज्ञानदेव अपनी मंडली के साथ मंत्रणा कर रहे हैं।]

खेचरनाथ—नामदेव को स्वच्छन्द छोड़ने से महाराष्ट्र में भक्तिमत का बवण्डर खड़ा हो सकता है।

मुक्ता—योग साधना कठिन है और भक्ति-मार्ग सुगम है, सरल है।

ज्ञानदेव—मुक्ता ! क्या नामदेव के साथ तीर्थस्थान पर भी छल होगा ?

मुक्ता—गुरु गोरखनाथ की परम्परा को स्थापित रखने के लिए ही तो सब कुछ होगा।

ज्ञानदेव—जैसी तुम्हारी इच्छा, वह देखो भक्त नामदेव पधार रहे हैं। खेचरनाथ ! कुम्हार तो आ गया न ?

खेचरनाथ—सारी व्यवस्था ठीक है।

(नामदेव का भजन गाते हुए प्रवेश)

नामदेव---हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण. हरे कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण हरे हरे॥

ज्ञानदेव---**(उठ कर स्वागत करते हुए)** आओ भक्त-राज ! हम सब आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे।

नामदेव---भाई ! सच तो यह है कि हमारा मन यहाँ भी नहीं लग रहा है। न जाने बिठोबा भूखे रहते हैं क्या ? मुझे बिठोबा की सेवा में तुरन्त लौट जाना चाहिए।

ज्ञानदेव---इस केवल भावना के पीछे कब तक बहते रहोगे, नामदेव ? थोड़ा विवेक से भी काम लो। जगत् का पालन करने वाला अप्रत्यक्ष जगदीश क्या कभी भूखा रह सकता है ? वह तो हर जगह विद्यमान है।

नामदेव---**(गंभीर होकर)** प्रत्येक स्थल पर तर्क काम नहीं करता ज्ञानदेव ! मुझे तो अपनी भावना में ही बहने दो। पर, यह आयोजन आज यहाँ क्यों ?

मुक्ता---नामदेव ! यहाँ अभी सन्त-परीक्षा होगी।

नामदेव---भोली है रे मुक्ता ! परीक्षा का काम क्या अब भी शेष रह गया है ?

ज्ञानदेव---डरो नहीं नामदेव ! आज यह सारा सन्त-समाज निर्णय करेगा कि सच्चे सन्त कौन-कौन हैं ? खेचर-नाथ ! परीक्षा का कार्यारंभ हो।

[खेचरनाथ एक कुम्हार को अपने साथ सभा में लाता है। जिसके हाथ में बर्तन बनाने के चाक का डंडा है। यह

कुम्हार वज्रयानी सिद्धों की खोपड़ियों पर डंडे का अनवरत प्रहार करता है और अन्त में नामदेव के मस्तक पर वार करता है। नामदेव पीछे खसकते हैं और कुम्हार का वार खाली जाता है।]

कुम्हार---सब सन्त पक्के घड़े हैं और नामदेव कच्चे।

मुक्ता---(घोषणा करके) सब सन्तों में नामदेव ही कच्चे ठहरे।

नामदेव---मुक्ता ! इस घोषणा का उत्तर तो अपने हृदय से पूछो। पर, ज्ञानदेव ! तुम भी एक कपटी मित्र ही सिद्ध हुए। कच्चा सन्त सिद्ध होने पर भी मुझे क्षोभ नहीं है ज्ञानदेव ! बिठोबा तुम्हें सद्बुद्धि दें।

(नामदेव का प्रस्थान और पटाक्षेप)

गृहस्थी

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१—बाबू रामभरोसा (दफ्तर के एक क्लार्क)
२—सेठ (एक धनी मकानदार)

स्त्री-पात्र

१—रामी (बा० रामभरोसा की धर्मपत्नी)
२—मुन्नी (रामी की पुत्री)
३—दूधवाली

गृहस्थी

[स्थान—एक संकड़ी-सी शहर की गली में एक साधारण-से मकान का कमरा। कमरे में एक ओर चारपाई पड़ी है, दूसरी ओर एक टूटी-सी कुर्सी और पुरानी नंगी टेबिल पड़ी है, जिसमें कई दरारें पड़ चुकी हैं। कमरे के चारों ओर खूँटियों पर स्त्री-पुरुष के फटे-पुराने कपड़े टँग रहे हैं। कमरे में एक ३५ वर्ष का युवक जो छोटी-सी उमर में ही अधेड़-सा दिखाई पड़ता है प्रवेश करता है। वह अपनी मैली-सी अचकन उतार कर एक खूँटी पर टाँगता है, टोपी को टेबिल पर फेंक देता है और दोनों हाथों से सर पकड़ कर टूटी कुर्सी पर जर्के से बैठ जाता है]।

रामभरोसा—(स्वतः) बड़ा साहब बहादुर बना है, कल का छोकरा विलायत जाकर आज हमारे ऊपर ही राय बहादुरी झाड़ता है। कहता है, "तुम बड़े गन्दे आदमी हो, जरा भी तमीज नहीं है। ऐसी गन्दी अचकन पहिन कर तुम्हें पेशी में आने का कैसे साहस हुआ?" पर, किया क्या जाय? भगवान् के घर भी न्याय नहीं है, केवल फ़ाइलों पर हस्ताक्षर करने के १५००) रु० मासिक ले जाता है।

यहाँ स्कीमों के ड्राफ़्ट बनाते-बनाते खोपड़ी का कचूमर निकल गया। फिर भी श्वसुर कहता है कि तमीज नहीं है। ज़रा बराबर बैठ कर काम करके तो दिखा, पता चल जायगा तमीज़ किसमें नहीं है। चार लाइन लिखेगा, जिसमें भी ३६ ग़लतियाँ, फिर ऊपर से कहेगा कि मेरे भरोसे पर ही यह आकाश रुक रहा है। यह कैसी आज़ादी मिली? यह कैसी व्यवस्था है? एक दुनिया भर का कूड़ा-कर्कट १५००) रु० मासिक वेतन पा रहा है और अपने ख़ून का पानी करने वाला, अपने दिमाग़ की शतरंज से साहब को बाज़ी जिताने वाला केवल १५०) रु० मासिक ही पाता है। जी चाहता है इस सारी व्यवस्था को उलट दूँ, इन हरामख़ोरों का सर धड़ से अलग कर दूँ, गली-गली और कूँचे-कूँचे में जाकर क्रान्ति की ज्वाला प्रज्वलित कर दूँ। पर, हाय! आज मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे पीछे आधे दर्जन बच्चे हैं, बीबी है और मैं एक बहिन का भाई हूँ। वाह रे ज़माने!

(बाबू रामभरोसा की उद्विग्न आवाज़ को सुनकर एक स्त्री कमरे में प्रवेश करती है)

रामी—(मुस्कराकर) आज यह अग्नि किधर भभक रही है? टेबिल पर जल का ग्लास रख देती है।

रामभरोसा—(रुष्ट होकर) तुम्हारे सर पर।

रामी—(खिलखिला कर हँस पड़ती है) तब तो

सब काम ठीक हो जायगा, न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। (ज़ोर-ज़ोर से हँसती है)।

रामभरोसा—रामी ! तुम एक अद्भुत स्त्री हो।

रामी—क्यों, क्या मेरे परियों के से पर लग रहे हैं ?

रामभरोसा—न तुम गर्मी से घबराती हो और न तुम्हें ठंड सताती है। गरीबी को तुमने मानो जीत ही लिया है। कितनी कड़ाके की ठंड पड़ रही है और तुम इस मर्दानी पतली धोती को पहनकर भी अपने घर की साम्राज्ञी बन रही हो। बुलबुल की तरह हँसती हो और कोयल की तरह कूँहकती हो। बच्चों को पालती हो, पति की फटकारें सहती हो और गृहस्थ की नाव को भयंकर भँवरों में भी खे रही हो। कमाल करती हो रामी ! तुम्हारी गजब की हिम्मत है ! अपनी मधुर वाणी की वंशी-बजाकर रोते हृदय को भी हँसा देती हो।

रामी—मेरे समझ में नहीं आता मनुष्य दुःखों को देखकर इतना वैरागी और इतना भयंकर क्यों बन जाता है ?

रामभरोसा—पहले मनुष्य बनो, फिर सब कुछ समझ लोगी ?

रामी—तो, क्या मैं पशु हूँ, जानवर हूँ ?

रामभरोसा—नहीं, तुम पत्थर हो, पत्थर।

रामी—यह बात तो नहीं है। हाँ, पर, मेरा हृदय पत्थर हो गया है। इस पत्थर से हृदय को पिघलाना बाबू

साहब के लिए भी एक टेढ़ी खीर है। मेरी अवस्था बड़ी विचित्र-सी है। कुछ समय भी ऐसा ही है (**आलमारी में से हजामत बनाने का कागज का डिब्बा और आईना बा० रामभरोसा के सामने रखती है**) पर, आपने अभी तक यह बात नहीं बताई कि आज की उदासी का खास कारण क्या है ?

रामभरोसा—अरे, यह सन् १९४९ है। एक सामान्य गृहस्थ तलवार की धार पर से गुजर रहा है। नौकरी बहुत बुरी चीज़ है। धनवान गरीब की सदैव हड्डियाँ चूँसने को प्रस्तुत रहता है, अफसर सदा मातहत का दिल दुखाने में अपना गौरव समझता है। दफ्तर जाते समय दवा की शीशी जेब में टूट गई—एक साइकिल से हलकी-सी टक्कर हो गई थी। दवा का धब्बा अचकन पर लग गया। बस, साहब देखते ही आग-बबूला हो गया। जी चाहता था उसका उसी समय गला घोट दूं। रामी, तुम्हीं बताओ, उस सूअर के बच्चे को यह बात किस मुंह और कैसे कहता कि मेरे पास एक ही अचकन है और आज तो घर में साबुन की एक टिकिया भी नहीं है ?

(**एक दस-ग्यारह वर्ष के बालक और एक छोटी-सी बच्ची का प्रवेश**)

लड़का—मास्टर जी तनखा मांगते हैं........। (**बा० रामभरोसा उदास होकर रामी की ओर देखते**

हैं और अपनी जाकिट की जेब से छोटा-सा एक नोट का पुलिन्दा निकालकर रामी को सौंपते हैं)

रामी—मास्टरजी से कल के लिए कह दो। (लड़का निराश होकर डरता हुआ-सा जाता है) क्यों मुन्नी, तुम उदास होकर क्यों खड़ी हो? अरे रोती हो? !....।

मुन्नी—लाला बिस्कुट नहीं देता। बाबूजी, मुझे पैसे दो। श्यामा, सुधीर सब बिस्कुट ले रहे हैं।

(बाबू रामभरोसा का कुड़ता पकड़कर नाचने लगती है और वह गद्गद् होकर उसे गोद में उठा लेते हैं और उसके हाथ में चार पैसे पकड़ाते हैं। पैसे पाकर बच्ची गोद से उछलकर नीचे उतर पड़ती है और वहाँ से दौड़कर भग जाती है)

रामभरोसा—कितना भोला जीवन है? श्यामा और सुधीर बिस्कुट लेते हैं तो मुन्नी बिस्कुट क्यों न ले? (नेत्रों में आँसू भर जाते हैं) भोली मुन्नी, बिस्कुट के लिए मचल कर तो तुम पैसे ले गई, पर जब श्यामा और सुधीर मोटर में बैठकर बाग की सैर करने निकलेंगे, तब तुम क्या करोगी? तुम्हारे रोने पर, मचलने पर, यहाँ तक कि तुम्हारे मरने पर भी तुम्हें मोटर नहीं मिलेगी। जब तुम नहीं मानोगी, तो माता की ओर से खासी मार पड़ेगी और पिटते-पिटते तुम्हारा कचूमर निकल जायगा। धनवान के बच्चे तक दुष्ट होते हैं। वे अपनी समृद्धि बताकर गरीब के बालकों को

बार-बार चिढ़ाते हैं। इससे दीन बालकों की आत्मा निर्बल हो जाती है, उनका आगे जाकर साहस टूट जाता है। पूर्ण यौवन पाकर विकसित होनेवाली कली फूल बनकर भी मुर्झाई-सी ही रहती है। क्यों रामी, तुम भी तो एक धनी बाप की बेटी थीं? याद है कुछ, बचपन में कितनी बार तूने मुझे सताया है?

रामी—परन्तु, कष्ट सहन करते-करते मनुष्य की आत्मा सुदृढ़ हो जाती है।

(नीचे से बाबू रामभरोसा के नाम की आवाज आती है।)

रामभरोसा—कौन है, रामी?

रामी—मकानदार।

रामभरोसा—इस गधे की दुम को कहदे कि यहाँ से चुपचाप चला जाय, वर्ना मोटे पेट का आज सारा पानी निकाल दूँगा।

रामी—आज तुम्हें यह क्या हो गया है?

रामभरोसा—बड़ा अफसोस है रामी, चोट पर चोट पड़ रही है और फिर पूछती है क्या हो गया है?

(आवाज देनेवाला व्यक्ति कमरे में आता है)

सेठ—क्यों बड़बड़ा रहे हो, बाबू साहेब? यदि बुरा लगता है तो इसी दम मकान खाली कर दो। थोथा चना यों ही भुनभुनाता है।

(बाबू रामभरोसा एक तेज चाकू टेबिल के दराज से निकाल कर सेठ की ओर झपटता है। रामी बीच में आकर प्रहार बचाती है। सेठ डरकर चिल्लाता हुआ भागता है)

रामभरोसा—रामी तूने यह क्या किया ? आखिर, गरीब इस प्रकार कब तक दबते रहेंगे ?

रामी—यह आपका और मेरा ही प्रश्न नहीं है, हमारे जैसे करोड़ों मध्यम वर्ग के गृहस्थ चक्की के दोनों पाटों के बीच निर्ममता से पीसे जा रहे हैं।

रामभरोसा—जी चाहता है इन भूखे व्याघ्रों की लाशें कर दूं, खून की नदियाँ बहा दूं और अन्त में जेल के सीखचों में बन्द होकर सड़-सड़कर मर जाऊँ या हम सब एक साथ आत्म-हत्या कर लें। पढ़ा-लिखा हूं, दिमाग रखता हूँ, शरीर काम करना चाहता है, मरता हूँ, पचता हूँ, पर, फिर भी पेट खाली है। बालक बिलख कर रह जाते हैं, स्त्री मन-मारकर पत्थर-सी हो गई है और जीवन निरस है। फिर ऐसे जीवन से कौन सा लाभ होगा ?

रामी—इतने निराशावादी बनने से यह गृहस्थ की नाव कैसे चलेगी ? आखिर, मैं भी एक मनुष्य हूँ। स्त्रियों का हृदय पुरुषों से अधिक कोमल होता है। कुछ ही महीनों की बात है, रमेश मैट्रिक पास हो जायगा।

(सहसा एक नाटे से कद की दूधवाली दूध की झारी

हाथ में लेकर कमरे में प्रवेश करती है। वह आधे नाक तक घूँघट निकाले हुए है)

दूधवाली—बहूजी, आज मेरा हिसाब जरूर कर दो। भैंस के लिए सानी का एक दाना भी घर में नहीं है।

रामी—अरी, कुछ दिन और ठहर जाओ। सुशीला के यहाँ विवाह है। खर्च पर खर्च चढ़ रहा है।

दूधवाली—गृहस्थ के खर्च का क्या पार है? तीन-तीन महीने हो गये आपके बाल-बच्चों को दूध पिलाते, पूरे ५०) हो गए। हमारे कोठी-कुएं तो हैं नहीं, पूरे गृहस्थी हैं।

रामी—अच्छा, कुछ पये तो अभी लेजा। बाकी शादी के बाद मिलेंगे। **(जेब से दो चार नोट निकालकर दूधवाली को देती है और दूधवाली बड़बड़ाती हुई एहसान के साथ नखरे से प्रस्थान करती है।)**

रामभरोसा—**(गहरी निश्वास खींचकर)** आज से पाँच वर्ष पूर्व गाँव में अकाल पड़ने पर इसका पति गोधू शहर में आया था। आज तो रंगत ही पलट गई। गोधू की बहू सेठानी बनकर हमें फटकार बता रही है। मुँह में पान चबाकर और नाक में सोने की नथ लटकाकर कैसे नखरे बताती है?

रामी—स्वयं को दुखी देखकर मनुष्य सुख की बातें करना भी भूल जाता है। वह चाहता है कि मेरे समान ही सब हो जाँय। मनुष्य बड़ा इर्ष्यालु है। मुझे तो किसी को सुखी देखकर बड़ा आनन्द आता है। हाँ, सुशीला बहिन की

बिटिया की परसों ही तो शादी है, क्या भाई बहिन को माहिरा नहीं देगा ?

रामभरोसा—बिटिया की शादी, मेरी बच्ची की शादी, हे भगवान् ! कुछ भी समझ में नहीं आता (**एक गहरी निश्वास छोड़ता है**) मकान बिक गया, घर के जेवर बिक गये और सब कुछ लग गया। मिला क्या ? १५०) रु० महीने की नौकरी। रामी, रामभरोसा यदि इस नगर में रहेगा तो सुशीला का माहिरा भी भरेगा। भाई के रहते प्राणों से प्यारी बहिन अपनी इकलौती बेटी के विवाह में सूनी कैसी खड़ी रहेगी ? घर का सामान बेचूंगा ? बर्तन बेचूँगा और फकीर बनूंगा, पर, सुशीला का माहिरा अवश्य भरूँगा। उसके मा-बाप की सारी सम्पत्ति पढ़ाई-लिखाई की आड़ में मैंने खर्च कर दी और समय आने पर उसे माहिरा भी न भरूँ, मुझे धिक्कार है, सौ बार धिक्कार।

रामी—केवल बातें बनाने से तो काम नहीं चलेगा, इसके लिए कुछ उपाय भी तो होना चाहिए।

रामभरोसा—शहर छोड़कर बम्बई भग चलो। बम्बई की मिलों में हम सब मिलकर मजदूरी करेंगे। आजकल मजदूर आराम से रहता है। बहिन समझेगी मेरा भाई भग गया। कुछ दिन सास-श्वसुर की फटकारें सुनकर और आँसू टपकाकर बैठ रहेगी। तू ही बता रामी, मैं इन १५०) रु० में क्या-क्या करूँ ? कर्जा चुकाऊँ, मकानदार को दूँ,

महीने भर तक घर-गृहस्थी का काम चलाऊँ, बहिन के माहिरा दूँ और क्या-क्या करूँ ?

(सहसा रास्ते में से आवाज आती है—'बाबूजी ! बाबूजी !! जल्दी आओ, तुम्हारी मुन्नी ताँगे से टकरा गई—सर फट गया। रामी और रामभरोसा दोनों घबराते हुए तीर की तरह नीचे उतर जाते हैं और खून से लथपथ मुन्नी को एक पड़ोसी की बाजुओं में देखते हैं)

रामभरोसा—हे भगवन् ! यह क्या हुआ ? (चक्कर खाकर धड़ाम से गिर पड़ते हैं)

रामी—अरे रमेश, देखता क्या है ? दौड़कर ताँगा ले आ, शफ़ाखाने चलना है। (पड़ोसी की ओर संकेत करके) आप लोग बाबूजी को जरा सम्भाल लेना। (बच्ची को लिए हुए सड़क की ओर चल पड़ती है।)

(पटाक्षेप)

महाशिक्षा

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१—प्रिन्सिपल (कालिज के अध्यक्ष)

२—प्रमोद (कालिज का एक छात्र)

स्त्री-पात्र

१—प्रभा (कालिज की एक छात्रा)

सहशिक्षा

(स्थान—कालिज में प्रिंसिपल का एक कमरा)

प्रिन्सिपल—याक़ूब और प्रमोद तुम्हारी ओर लगातार घूर रहे थे, यही तो तुम्हारी शिकायत है न प्रभा!

प्रभा—जी! वे लगातार घूर रहे थे—उनकी घृणित दृष्टि में मैंने नीचता, भय और क्रूरता का नग्न चित्र देखा, जिसको मेरा हृदय सहन न कर सका। मैं काँप उठी। क्योंकि मुझे असहनीय वेदना हो रही थी। अनिष्ट की शंका हो रही थी। मैंने अपनी आवाज़ इसके विरुद्ध उठाना ही अच्छा समझा।

प्रिन्सिपल—मैं तुम्हारे साहस की सराहना करता हूँ।

प्रभा—जब से मैंने अपनी बहिनों के मुख से सुना कि यह तो एक साधारण-सी बात है, मैं स्तम्भित रह गई और आज मैंने जाना कि मनुष्य कितना नीच हो सकता है। वातावरण इतना गन्दा हो रहा है कि हमारा एक कक्षा से दूसरी कक्षा में प्रवेश करना कठिन हो जाता है।

प्रिन्सिपल—मैं आप लोगों की कठिनाइयों को खूब अच्छी तरह समझता हूँ, आप लोगों के साथ मेरी हार्दिक सहानुभूति है।

प्रभा—फिर यह अपमान क्यों ?

प्रिन्सिपल—यह प्रश्न शिक्षा-पद्धति का है।

प्रभा—क्या आपका आशय यह है कि लड़कियाँ घरों के कोनों में बैठी सड़ा करें और अपने आपको शिक्षा से सदैव के लिए वंचित रक्खें ?

प्रिन्सिपल—तुम मेरे वाक्य का अर्थ ठीक नहीं समझ सकीं। प्रभा देवी ! यदि लड़कियाँ चाहती हैं कि वह लड़कों के साथ बैठ कर शिक्षा प्राप्त करें, तो उन्हें स्वयं को प्रथम सहशिक्षा के योग्य बनाना होगा।

प्रभा—इससे आपका आशय ?

प्रिन्सिपल—यह तो मैं पहले ही कह चुका कि आप लोगों के साथ मेरी हार्दिक सहानुभूति है, किन्तु क्षमा करना, प्रभा देवी ! मान लो कि मैं पुरुषों की तरफ़ से वकालत कर रहा हूँ और आप स्त्रियों की ओर से, तो मुझे कहना पड़ेगा कि भारतीय लड़कियाँ सहशिक्षा के अयोग्य हैं। सहशिक्षा पाश्चात्य सभ्यता की एक देन है। जब तक लड़कियाँ पाश्चात्य महिलाओं की तरह झूठी लज्जा को त्याग कर स्वयं को निडर नहीं बना लेंगी, तब तक सहशिक्षा का सफल होना कठिन ही नहीं असंभव है। मेरे कहने का मुख्य आशय यह है कि स्त्री-पुरुष (sex) के भेद को भूल कर लड़कियों को लड़कों के वातावरण में घुल जाना चाहिए। सुदूर एवं अप्राप्य वस्तु में आकर्षण होता है प्रभा !

पर जब वह वस्तु सदैव समीप रहने लगती है, तो आकर्षण की वह तीव्र मात्रा क्रमशः स्वतः ही मिट जाती है। दूसरा प्रभाव चरित्र एवं व्यक्तित्व का पड़ता है, जिसकी क्षमता के विरुद्ध पुरुष तो क्या देवता भी नहीं ठहर सकते। सीता के पावन चरित्र ने रावण की पापात्मा को परास्त किया, इसी प्रकार सावित्री, द्रौपदी और पद्मिनी आदि भारतीय ललनाओं ने अपनी चरित्रशक्ति के परिचय दिये हैं। क्यों, बोलती क्यों नहीं, क्या यह सच नहीं है?

प्रभा—हो सकता है कि यह सब सच है; परन्तु एक हाथ से ताली नहीं बज सकती प्रिन्सिपल साहब, इस समस्या को सुलझाने के लिए दोनों ओर से हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है।

प्रिन्सिपल—यह ठीक है, लेकिन पहले एक हाथ बढ़ा कर तो देखो, दूसरा हाथ स्वतः ही आ मिलेगा, यह मेरा दृढ़ विश्वास है; क्यों कि, मानव-हृदय ही ऐसा है।

(पर्दे को ऊँचा करके एक लड़का प्रवेश करता है)

प्रमोद—क्या मैं आ सकता हूँ? **(प्रभा और प्रमोद की चार आँखें होती हैं और प्रिन्सिपल आने का इशारा करते हैं।)**

प्रिन्सिपल—हाँ, (कुछ क्रुद्ध होकर) भाई! तुमसे तो कम से कम यह आशा न थी।

प्रमोद—इसमें मेरा अपराध ही क्या था, साहब?

प्रिन्सिपल—तुम्हारा अपराध ही क्या था, ऐसा कहते तुम्हें शर्म नहीं आती। भरी क्लास में प्रोफ़ेसर का तिरस्कार करना और अपशब्द कहना अपराध नहीं तो क्या है? इस कलुषित व्यवहार के फलस्वरूप तुमको कालिज से क्यों न निकाला जाय? आखिर यह सब क्यों हुआ?

प्रमोद—**(कुछ घबरा कर)** हुआ तो कुछ नहीं, एक साधारण-सी बात थी। **(प्रभा की ओर देख कर)** यहाँ तक बात लाने की इसमें आवश्यकता ही क्या थी, प्रभा देवी?

प्रभा—आपके विरुद्ध मैंने कोई झूठा आरोप नहीं लगाया है।

प्रिन्सिपल—होश में आओ, प्रमोद। यह तुम्हारा और प्रभा का घर नहीं है। सच बताओ, तुमने प्रोफ़ेसर साहब का अपमान किया या नहीं?

प्रमोद—न मैंने प्रोफ़ेसर साहब का ही अपमान किया है और न प्रभा देवी से ही कुछ कहा है।

प्रिन्सिपल—तो, फिर यहाँ तक नौबत कैसे आ गई?

प्रमोद—भगवान् जानें!

प्रिन्सिपल—क्या यह सच है कि तुमने प्रभा की ओर कभी नहीं घूरा।

प्रमोद—प्रिन्सिपल साहब! यदि किसी की ओर देखना घूरना है, तो इस समय मैं आपकी ओर भी घूर रहा हूँ।

प्रिन्सिपल—उद्दंड लड़के ! मैं तुझे क्षमा कर देता; परन्तु अब . . .

प्रमोद—परन्तु, अब मैंने क्षमायाचना करने से पूर्व ही अपने शुद्ध भावों को प्रकट कर दिया।

प्रिन्सिपल—चुप रहो, पहले यह बताओ तुमने प्रोफ़ेसर का अपमान क्यों किया ?

प्रमोद—मैंने प्रोफ़ेसर साहब का अपमान करने की कभी कल्पना भी नहीं की।

प्रिन्सिपल—तो क्या यह सब झूठ है ?

प्रमोद—बात बहुत साधारण है, केवल समझ का अन्तर है। प्रोफ़ेसर साहब ने प्रभा से एक प्रश्न पूछा। प्रभा प्रश्न का उत्तर देने के लिए खड़ी हो गई और अपने चश्मे को ठीक करने लगी, किन्तु हाथ का अचानक झटका लगने के कारण ऐनक ज़मीन पर गिर पड़ा और चूर-चूर हो गया। समस्त कक्षा हँस पड़ी। मैं भी हँसा और मेरी और इनकी चार आँखें हो गईं। इन्होंने समझा कि मेरे द्वारा ही इनकी हँसी उड़ाई गई है। बस ! फिर क्या था, इन्होंने प्रोफ़ेसर से मेरी शिकायत कर दी और लगे प्रोफ़ेसर साहब मुझे फटकारने। मैंने प्रोफ़ेसर को समझाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु सब व्यर्थ गई। अन्त में झगड़ा इतना बढ़ गया कि प्रोफ़ेसर की कठोर आज्ञा के कारण मुझे उस समय कक्षा से बाहर जाना पड़ा और अब अपने विद्यार्थी-जीवन

में मैं प्रथम बार आपके सामने एक दोषी के रूप में खड़ा हूँ।

प्रिन्सिपल—मिस्टर प्रमोद! इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस घटना से प्रभा देवी एवं प्रोफ़ेसर साहब दोनों का अपमान हुआ है। अब देखना यह है कि इस काण्ड में तुम्हारा हाथ कितना है?

प्रमोद—मेरा हाथ उस घटना में उतना ही है, जितना कि संपूर्ण कक्षा का। यदि सारी कक्षा दोषी है, तो मैं भी अवश्य अपराधी हूँ।

प्रिन्सिपल—मिस्टर प्रमोद, तुम्हारा प्रोफ़ेसर के साथ विवाद अवश्य ही कटु और उनके लिए अपमानजनक हुआ होगा। इस समय तुम्हारे बोलने के ढंग को देख कर इस निष्कर्ष पर पहुँचने में मुझे हिचकिचाहट नहीं है। तुम्हें क्षमा करने का अर्थ होगा ऐसे अप्रिय काण्डों को प्रोत्साहन देना। अतः कालिज की Discipline की रक्षा करने के लिए, छात्राओं को अपमान से बचाने के लिए और लड़कों को भविष्य में शिक्षा देने के लिए मैं दुःख के साथ इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि तुम एक माह तक अपनी कक्षा में नहीं बैठ सकते।

(प्रभा के चेहरे पर सहसा उदासी दिखाई देती है)

प्रभा—प्रिन्सिपल साहब! मुझे भी यही दंड दीजिए। यह सब मेरे ही कारण हुआ है।

प्रिन्सिपल—तुम्हारा इसमें क्या अपराध है?

प्रभा—अभी आपने ही तो कहा था, "पहले एक हाथ बढ़ा कर देखो, दूसरा हाथ स्वतः ही आ मिलेगा।" मैं कालिज की महिलाओं की ओर से अपना हाथ आगे बढ़ाती हूँ, अब बारी पुरुषों की है। भाई प्रमोद, मेरा अपराध क्षमा कर दो, भविष्य में इस कालिज की लड़कियाँ कभी लड़कों की शिकायत नहीं करेंगी। मैं तुम्हारे चरण छू कर क्षमा माँगती हूँ। (चरण छूती है)

प्रमोद—(चौंक कर) प्रभा बहिन! (अपने हाथों से उठाता है और चरण छूने से रोकता है)

प्रिन्सिपल—(मुस्कराते हैं और उनके चेहरे पर हर्ष एवं संतोष की रेखा खिंच जाती है) अच्छा, दोनों अपनी कक्षा में जाओ। मुझे अपने विद्यार्थियों पर गर्व है। (दोनों का प्रस्थान)

यवनिका-पतन

षड्यन्त्र

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१. धनेश — एक सेठ, चुनाव का उम्मीदवार

२. यासीन
३. मिट्ठू
४. कुटिलेश
} धनेश के साथी

५. सुरेश — धनेश के विरुद्ध, चुनाव का उम्मीदवार

६. माणकचन्द — एक अधेड़ मनुष्य

७. एस० पी०, पुलिस इन्स्पेक्टर, गुप्तचर आदि

षड्यन्त्र

प्रथम दृश्य

[एक ड्राइंग रूम की आराम कुरसी पर भैंसे जैसा स्थूल और काला धनेश नामक आदमी सिगरेट पीता हुआ अपने साथियों से रात्रि में बातें कर रहा है। धनेश के उपस्थित साथी खुशामदी, लफंगे और बदमाश-से दिखाई पड़ते हैं।]

धनेश---कुटिल, मिट्ठू और यासीन जैसे दिन में तारे उगाने वाले साथी रखकर भी मैं अपनी मनोकामना पूर्ण न कर सका।

यासीन---धनेश बाबू! जरा हाथ पोला कर दीजिए, सब काम ठीक हो जायगा।

मिट्ठू---आजकल के जमाने में कंजूसी से काम नहीं चल सकता।

कुटिलेश---पैसे की जगह पैसा ही काम करता है, थोथी बातों से किला नहीं बन सकता।

धनेश---पानी की तरह पैसा बहा रहा हूँ, फिर भी मुझे कंजूस बताते हो। तुम्हारी बातों में आकर मैंने तीन

लाख खर्च कर दिये, पर हर बार मुझे नीचा देखना पड़ा। अब तुम पचास हजार का खर्च बताते हो, मैं साठ हजार खर्च करने को तय्यार हूँ। यह चुनाव तो किसी भी कीमत पर हमें जीतना ही होगा, चाहे....।

यासीन—हाँ, चाहे दो-चार खून ही क्यों न हों !

मिट्ठू—कुटिल दादा ! इस बार साठ हजार की मंजूरी है, जल्दी से जल्दी चुनाव का नकशा बना डालो।

धनेश—यासीन मियाँ ! यदि इस बार भी काम नहीं बना तो समझ लेना दुनिया में कहीं भी ठिकाना नहीं रहेगा।

यासीन—या खुदा आप भी क्या फर्माते हैं ? धनेश बाबू की जीत के चार चाँद लगाकर ही यासीन साँस लेगा।

धनेश—यासीन ! पैसे में वह ताकत है, जिससे चुनाव तो क्या विधाता तक को जीता जा सकता है। धनेश की गाँठ का पैसा बहाकर चारों ओर अपने ही सदस्यों का जाल बिछा दो फिर देख लूंगा, सुरेश कैसे जीत जाता है ?

कुटिलेश—यह तो केवल पार्टी का टिकिट प्राप्त करने का तरीका है....।

मिट्ठू—अजी, अभी टिकिट तो मिलने दो, टिकिट मिल जाना ही आधी बाजी जीतना है। अरे ! धनेश बाबू तो ऊँघ रहे हैं। **(कुटिलेश, मिट्ठू और यासीन तीनों मिलकर धनेश का कंधा हिलाते हुए दिखाई पड़ते हैं)**

धनेश—**(एकाएक चौंककर)** जरा आँख लग गई थी।

कुटिलेश---कोई बात नहीं, हम सब जग रहे हैं। हाँ, तो चैक दे दीजिए जिससे कल से ही काम शुरू कर दिया जाय।

धनेश---(अपनी जेब से चैकबुक निकालकर कुटिलेश को सौंपता है) कुटिलेश बाबू ! अब देर नहीं होनी चाहिए।

(तीनों सलाम कर प्रस्थान करते हैं)

द्वितीय दृश्य

[समय सायंकाल। एक सुरम्य बगीची का दृश्य। कुटिलेश, मिट्ठू और यासीन ठंडाई बनाते हुए दिखाई पड़ते हैं।]

मिट्ठू---उल्लू के पट्ठे ने सिर्फ दस हजार का चैक ही दिया है।

कुटिलेश---घबराओ मत पाई-पाई वसूल करके छोड़ेंगे।

यासीन---भाई ! सकीना का श्वसुराल पाकिस्तान में है। मुझे छोकरी को कल ही विदा करना है---कम से कम एक हजार तो मिल ही जाने चाहिएँ।

मिट्ठू---वह देखो, कौन इधर आ रहा है ?

कुटिलेश—अरे, यह तो सुरेशचन्द्र है । वह देखो, इधर ही आ रहा है ।

(सुरेशचन्द्र का प्रवेश)

सुरेश—क्यों, कुटिलेशजी आज अकेले-अकेले ही छान रहे हो ?

कुटिलेश—वाह ! अकेले कैसे, अब तो हम चार हैं । क्यों रे मिट्ठू ?

मिट्ठू—सुना है कि सुरेश शर्मा भी इस बार चुनाव लड़ रहे हैं ?

सुरेश—भाई, क्यों हँसी करते हो ?

कुटिलेश—इसमें हँसी की कौन-सी बात है ?

सुरेश—कुटिलेश दादा ! एक सीधा-सादा गरीब ब्राह्मण इन पूंजीपतियों से कैसे टक्कर ले सकता है ? सुना है कि धनेश बाबू इस बार रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं ?

कुटिलेश—भय्या, केवल रुपया बर्बाद करने से ही चुनाव नहीं लड़ा जायगा । आपको जनता जनार्दन का आशीर्वाद प्राप्त है । आपकी लोक-सेवा और ईमानदारी के समक्ष कौन ठहर सकता है ?

मिट्ठू—यासीन कहाँ गया ? **(घबराते हुए)**

कुटिलेश—मिट्ठू ! मेरा कोट कहाँ है ?

मिट्ठू—सचमुच तुम्हारा कोट कहाँ है ? कहीं यासीन कोट लेकर तो नहीं भग गया ?

कुटिलेश—गजब हो गया मिट्ठू, हम सब बर्बाद हो गए। यासीन बड़ा षड़्यंत्रकारी है। कहीं वह पाकिस्तान न चला जाय।

सुरेश—आखिर बात क्या है ?

कुटिलेश—बात क्या है, यासीन डाकू है। यह एक बहुत बड़ा षड्यंत्र है। हम सब मारे गए।

मिट्ठू—अरे ! मैंने अभी नई धोती भी तो नहीं खरीदी।

(हिचकियाँ भर कर रोता है)

सुरेश—साफ-साफ क्यों नहीं कहते, क्या बात है ?

कुटिलेश—यासीन ने हमें लूट लिया।

सुरेश—कैसे ?

कुटिलेश—मेरे कोट की जेब में हजार-हजार के दस नोट थे। यासीन कोट लेकर भग गया।

सुरेश—तुम्हारे पास इतनी बड़ी रकम कहाँ से आई ?

मिट्ठू—कुटिलेश दादा ! अब सुरेश से कपट क्यों. . . ? कुटिलेश दादा धनेश बाबू से चुनाव का षड़यंत्र रचकर ऐंठ लाये थे। हाय ! हम मर गए।

सुरेश—वाह रे षड़यंत्रकारियो ! छापा तो तुमने खूब मारा। मैं सब समझ गया। कुटिलेश सुरेशचन्द्र के विरुद्ध धनेश के चुनाव एजेन्ट बने होंगे। पर मिट्ठू ! अब रोने से क्या लाभ ?

कुटिलेश---हमें अफसोस तो यह है कि हम अब इस चुनाव में तुम्हारी कुछ भी मदद नहीं कर सकेंगे।

सुरेश---रहने दो कुटिलेश दादा ! इन बातों में क्या रक्खा है ! मेरी सहायता तो भगवान् करेंगे। हाँ, कोतवाली में चलकर जल्दी रिपोर्ट दर्ज करवा दो। रकम भवानी शंकर सेठ की बताना, धनेश का कोतवाली में नाम तक मत लेना, मैं सेठ को फोन करता हूँ। यासीन को आज ही गिरफ्तार करवाना है---वह एक खतरनाक एजेन्ट है। चलो !

(तीनों का प्रस्थान)

[सिटी कोतवाली का एक दफ्तर। ऐस० पी०, इन्पेक्टर और सी० आइ० डी० का एक आफिसर परस्पर बातें करते दिखाई पड़ते हैं]

ऐस० पी०---बड़ा विचित्र षड्यंत्र है। राजनीति में भी आजकल सौदेबाजी और सट्टेबाजी होने लग गई।

इन्सपेक्टर---यासीन एक पक्का चार सौ बीस आदमी है। बिजली चढ़ाने पर कुछ बकरने लगा है।

ऐस० पी०---क्या कहता है ?

इन्सपेक्टर---भुवनेश्वर की बगीची में कुटिलेश बाबू का कोट चुराया गया है।

ऐस० पी०---सवाल तो यह है कि कुटिलेश के पास इतनी बड़ी रकम कहाँ से आई ? क्यों मि० डे इस सम्बन्धमें आपकी गुप्त रिपोर्ट क्या कहती है।

गुप्तचर---कुटिलेश की माली हालत बहुत खराब है। तीन दिन से वह घर से गायब है। कुटिलेश धनेश बाबू का चुनाव एजेन्ट है। मेरा अनुमान है कि यह रकम कुटिलेश ने धनेश से ही प्राप्त की है।

ऐस० पी०---शाबास ! आपने असली चोर को पकड़ लिया। ठीक है, आप कल फिर मिलना।

(सलाम करके गुप्तचर बाहर जाता है। एक अधेड़ मनुष्य का प्रवेश)

ऐस० पी०---आइये माणकचन्द जी ! उम्र तो आपकी बहुत बड़ी है, अभी हम आपको ही याद कर रहे थे।

माणकचन्द---इसीलिए मैं जनाब की सेवा में हाजिर हो गया। (अपनी जेब से निकाल कर नोट के दो पुलन्दे ऐस० पी० साहब को सौंपता है। ऐस० पी० इन्सपेक्टर को सौंप देते हैं। और वे गिनने लगते हैं)।

इन्सपेक्टर---हुजूर ये तो सिर्फ दो....हैं।

ऐस० पी०---(क्रोधित होकर) लौटा दो इन कागज के टुकड़ों को। धनेश की गिरफ्तारी का फौरन वारंट जारी कर दो।

माणकचन्द---नहीं हुजूर ऐसा मत करो, बना बनाया खेल बिगड़ जायगा। हम तो आपकी सदा सेवा करते हैं। (कुछ नोट निकाल कर इन्सपेक्टर को और देता है)

ऐस० पी०---(खड़ा होकर सिगरेट जलाते हुए)

माणकचन्द ! चाहे तुम इस कान सुनो चाहे उस कान, पूरे पाँच.... (हाथ का पंजा बताते हुए) वसूल करके छोड़ूंगा।

इन्सपेक्टर---(ऐस० पी० के साथ खड़े होते हुए) इस वक्त न हो तो कल अदा कर जाना (एस० पी० इन्सपेक्टर-कमरे की चिक उठा कर बाहर जाते हैं, उनके पीछे माणक चन्द्र हाथ जोड़े गिड़गिड़ाता हुआ, जाता हुआ दृष्टिगोचर होता है।)

नारी

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१. सुखदयाल	एक अध्यापक व सुक्खी का पति
२. शिवदयाल	सुखदयाल का वृद्ध पिता
३. कृपाराम	सुखदयाल का मित्र

स्त्री-पात्र

४. सुक्खी	सुखदयाल की स्त्री
५. रम्भा	सुक्खी की पड़ोसिन

नारि

प्रथम दृश्य

[एक टूटे-से झोंपड़े में अध्यापक सुखदयाल अपनी खटिया पर बाहर से आकर बैठते हैं। उनकी पेशानी से पसीने की धाराएँ टपक रही है, वे हताश, उदास, और उद्विग्न-से दिखाई पड़ते हैं। समीप ही एक स्त्री आँगन पोतती हुई दृष्टिगोचर होती है और सुखदयाल से बातें भी करती जाती है।]

सुक्खी--आज आप इतने उदास क्यों हैं ? पास में पंखा पड़ा है, जरा हवा कर लो। पानी का ग्लास पाँच मिनिट से आपके पास पड़ा है। जल क्यों नहीं पीते ? आखिर, इस तरह कब तक सोचते रहोगे ?

सुखदयाल--सुख ! परिस्थितियाँ इतनी गहरी हो गई हैं कि सोचने के सिवा अब बच ही क्या रहा है ? तुझे कुछ कहना चाहता हूँ, पर डरता हूँ।

सुक्खी--डरते हो, क्यों ?

सुखदयाल--इसलिए डरता हूँ कि कहीं मेरी बातें सुनकर मेरे सुख का हृदय न फट जाय।

सुक्खी—ऐसी क्या बात है ? जल्दी बताओ !

सुखदयाल—बस, घबरा गई, सुनने पर तो दिल ही बैठ जायगा ।

सुक्खी—वह नहीं बैठेगा । दुःख सहनेवाला हृदय भी कठोर बन जाता है ।

सुखदयाल—कण-कण पर मुहर लगी है । जो जिसका है, उसे वह ले लेता है ।

सुक्खी—क्या मतलब ?

सुखदयाल—सुख ! इसका अर्थ तो बहुत साफ है । जब मैं बहुत छोटा था, तब मुझे एक सच्चे सन्त मिले थे । उन्होंने मुझे बताया था तुम भी भगवान् हो, मैं भी भगवान् हूँ, सर्वत्र भगवान् ही भगवान् हैं ।

सुक्खी—फिर वही फकीरों की-सी बातें....।

सुखदयाल—जब कुछ बताने लगता हूँ तो कुछ सुनती नहीं, और जब नहीं बताता हूँ तो कहती है, "मुझे बताते क्यों नहीं ?"

सुक्खी—हाँ, फिर क्या हुआ ?

सुखदयाल—होता क्या था, आज मैं नौकरी छोड़ आया ।

सुक्खी—क्या कहा ? नौकरी छोड़ दी, क्यों ?

(अंगन को पोतना बन्द करके आश्चर्य में पड़ जाती है)

सुखदयाल—गरीब का लड़का दीनू तीन दिनसे भूखों मर रहा था। उसे दसवीं कक्षा पास किए दो वर्ष हो गए, पर उसे कहीं भी नौकरी नहीं मिली। आज वह मेरे पास आकर पाठशाला में फूट-फूटकर रोने लगा। सुख! सच कहता हूँ, उसकी दशा पर मुझे तरस आ गया। मैं काँप उठा। पाठशाला में कोई अन्य स्थान रिक्त नहीं था। अतः मैंने दीनू के पक्ष में स्वयं त्याग-पत्र दे दिया।

सुक्खी—वीर कर्ण ही जो ठहरे। आज रोजी तक को दाँव पर लगाकर घर लौटे हो। शाबास! **(मुस्कराती है)**

सुखदयाल—अरे तुम तो हँसती हो?

सुक्खी—हँसू नहीं, तो क्या रोऊँ? लुटानेवाले ने खजाना लुटा दिया। मैं कृपण की तरह कोनेमें बैठकर आँसू क्यों बहाती रहूँ?

(छप्पर के पीछे से सहसा एक वृद्ध पुरुष का रुष्ट मुद्रा में प्रवेश)

शिवदयाल—अरे सुक्खा! **(सुक्खी की ओर संकेत करके)** क्यों इस कुलटा के चक्कर में पड़कर बर्बाद हो रहा है? इस महँगाई के जमानेमें औरत के कहने से नौकरी छोड़कर कहाँ जायगा?

सुखदयाल—दादा! सोच-समझकर बात मुँह से निकालनी चाहिए। नौकरी मैंने किसी के कहने से नहीं छोड़ी है। इसके लिए मैं स्वयं ही जिम्मेदार हूँ।

शिवदयाल---राम ! राम !! घोर कलयुग आ गया। स्त्री का पक्ष लेकर मुझे इस प्रकार घुड़की बताते तुझे लज्जा नहीं आई। निकल जा मेरे घर से। तुझे, तेरी बहू रानी और तेरे बाल-बच्चों को खिलाने के लिए मेरे पास एक पैसा भी नहीं है।

(सहसा एक युवक और एक युवती का प्रवेश)

कृपाराम---वाह रे भाई सुखदयाल ! तुम भी एक अजीब दीवाने हो। बाल-बच्चों का जरा भी खयाल नहीं किया। अपनी दुनिया अपने हाथों से उजाड़कर कौनसा सुख भोगना चाहते हो ? क्यों नहीं स्तीफा वापस ले लेते ?

सुखदयाल---कृपा दादा ! आप भी कैसी बच्चों की-सी बातें करते हैं ? छूटा हुआ तीर और मुँह से निकली हुई बात कभी वापिस नहीं आती, चाहे हजार प्रयत्न करो।

रम्भा---अजी ! यह नौकरी क्यों करने लगे ? दो छोटे भाई बैल की तरह दिन-रात पिलते हैं और कमा-कमा कर इन लोगों की छाती में धरते हैं। जो आदमी हराम की खाने पर तुल रहा हो, वह हाथ-पाँव कैसे हिला सकता है ?

कृपाराम---भाभी ! सुखदयाल दादा के प्रति ऐसे शब्द मुँह से निकालते तुम्हें लज्जा नहीं आई।

शिवदयाल---रम्भा को यह पंचायती चुकाने के लिए किसने कहा था ? जब तक मैं जीवित हूँ, मेरे बीच में बोलने

का किसी को क्या अधिकार है ? निर्लज्जता की भी कोई हद होती है। सुखदयाल का निरादर मेरी ही बेइज्जती है। कुलटा कहीं की !

सुक्खी---अभी इन्हें नौकरी छोड़े दो दिन भी नहीं हुए कि आँधी और तूफान उठ खड़ा हुआ। रम्भा बहिन, इतनी गर्म क्यों होती है ? मेरे बालक हराम की रोटी खाने के लिए कभी तेरे सम्मुख हाथ नहीं पसारेंगे।

सुखदयाल---दादा ! (शिवदयाल की ओर जल भरी आँखों से देखते हुए) हम आपके घर में भार स्वरूप बनकर कभी नहीं रहेंगे।---हमें क्षमा कर दो।

शिवदयाल---(रोते हुए) मेरे बेटा ! तुझे क्या हो गया है ? इस घर की सुख-समृद्धि को बर्बाद करने पर तुम लोग क्यों तुल रहे हो ?

[एकाएक समीप ही हल्ला सुनाई पड़ता है---अरे बचाओ ! बचाओ !! आग लग गई ! रम्भा का घर जल रहा है। साँय-साँय करती हुई आग की लपटें सबको दिखाई पड़ती हैं। सुख दयाल, शिवदयाल, कृपाराम, रम्भा, सुक्खी सबके सब घटनास्थल की ओर दौड़ते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।]

पटाक्षेप

द्वितीय दृश्य

[लहलहाते हुए अपने हरे भरे खेत की मुंडेर पर सुखदयाल बैठा हुआ गोफे से पक्षियों को केवल डराता है, कंकर मारता नहीं। मानो सुखदयाल का यह भेद पक्षी भी जान गए हैं---वे बिल्कुल नहीं डरते और मन भर कर अनाज चुगते हैं।]

सुक्खी---(एकाएक पीछे से आकर) यदि चिड़ियाँ ही चुगाना है तो इतना परिश्रम क्यों किया था ? तुम से पक्षी तक नहीं डरते और तो कौन डरेगा ?

सुखदयाल---मैं किसीको डराना ही नहीं चाहता, फिर डराने धमकानेका सवाल ही कहाँ उठता है ? सुख ! तुम्हारे खेतमें २०० मन गल्ला है, यदि पाँच मन ये पक्षी चुग जाँय तो कौनसा दिवाला पड़ता है ? कोई किसी को नहीं देता, सब का पेट भगवान् भरते हैं।

(सहसा सुखदयाल को कोई पुकारता है। सुखदयाल का प्रस्थान। सुक्खी खेत की मुंडेर पर बैठ कर खेत की रखवाली करती है। एक जीर्ण वस्त्र पहने हुए स्त्री एक गऊ को पीटती हुई सुक्खी के खेत की ओर बढ़ती है)

सुक्खी---अरी ! इसे क्यों मारती है ? देखती नहीं, इसका शरीर तो पहले ही हड्डियों का ढाँचा बन गया है।

जीर्णवस्त्रोंवाली---तेरे जैसा लहलहाता हुआ खेत

मेरे होता तो इसे बीच खेत में खड़ी-खड़ी चरा देती ।

सुक्खी---(गऊ का कान पकड़कर) आ गऊ माता ! आज तुझे खेत के बीच में खड़ी करके ही चराऊँगी । (गाय को अपने हरे भरे खेत की ओर घेर देती है और गाय खेत के बीच में खड़ी होकर मन भर चारा चरती है--सहसा कृपाराम के साथ सुखदयाल का प्रवेश)

कृपाराम---(आश्चर्य से) *यह क्या हो रहा है भाभी ?*

सुक्खी---आओ लाला ! तुम्हारे मामा कहा करते हैं---'पुण्यकी जड़ सदा हरी' . . .। कोई खेत में चिड़िया चुगाता है, मैं खेत के बीच खड़ी-खड़ी गय्या चराती हूँ तुम्हारे भैया के और मेरे बीच घुड़ दौड़ चल रही है । कहो, गाँव के क्या समाचार हैं । दादा, भय्या, रम्भादि तो प्रसन्न हैं ।

कृपाराम---इस कलयुग में मैं यह कौनसी दुनिया देख रहा हूँ ? *भाभी ! इस दुनिया में ज्यादा अच्छा होना भी पाप है ।*

सुखदयाल---कृपा ! अच्छाई का परिणाम सदा अच्छा ही होता है । बेईमानी से आत्मा कलुषित होकर स्वयं को धिक्कारने लगती है । सुख-दुःख तो कर्म के भोग हैं जो सब को भोगने ही पड़ते हैं ।

कृपाराम---ठीक है सन्त महाराज ! पर घरवालों की भी तो कुछ सम्भाल लेनी ही चाहिए । बेचारे शिवदयाल इस वृद्धावस्था में अत्यन्त दुःखी हैं । रम्भा के लकवा हो गया है ।

सुक्खी—क्या कहा ? दादा चिन्तित हैं, रम्भा के लकवा हो गया । बड़ी शर्म की बात है. (अपने पति की ओर संकेत करके) आप खड़े-खड़े मेरी ओर क्या देख रहे हैं ? पुरुष को इतनी आसक्ति शोभा नहीं देती । बेचारी रम्भा ! . . . .। लाला ! तुम अपने मित्र को अपने साथ अभी गाँव ले जाओ । रम्भा को यहाँ भेज देना मैं उसकी सेवा-सुश्रुषा करके शीघ्र ही ठीक कर लूंगी । लाला ! मेरी ओर क्यों ताक रहे हो ?

कृपाराम—भाभी ! तुम एक विचित्र नारी हो। इस कलयुगी दुनिया में हम यह कौन-सा दृश्य देख रहे हैं ?

सुक्खी—कैसे ?

कृपाराम—इसका उत्तर तो अपने हृदय से पूछो।

सुखदयाल—चलो कृपा ! इस पगली की विचित्रता में ही लक्ष्मी का निवास है । मैं तो एक फक्कड़ हूँ ।

कृपाराम—अच्छा, विचित्र नारी प्रणाम ! तू जो चाहेगी वही होगा ।

(सुक्खी स्त्री-सुलभ लज्जा के आवरण से दब कर अपनी साड़ी को मस्तक पर खींचकर कनटिपयों से अपने पति को देखती हुई घर में प्रवेश करती है । सुखदयाल और कृपाराम का प्रस्थान ।)

पटाक्षेप

हरिनारायण मैणवाल कृत

कृष्ण-वियोगिनी

(एकांकी नाटक)

तीव्र सम्वेदना सम्हाले हुए, गागरमें सागर भरे हुए, यह छोटे-छोटे, चुटीले एकांकी हिन्दी साहित्यमें निस्संदेह नवीन हैं। विद्यार्थियोंके लिए भी उपयुक्त।

डी० सी० १२८ पृष्ठ • मूल्य डेढ़ रुपया

लेखकका दूसरा संग्रह

"मानिनी गोपा"

वैसा ही रुचिकर तथा भारतीय गौरव एवं भावात्मक आदर्शवादसे भरा हुआ जैसा पहला-संग्रह 'कृष्ण-वियोगिनी' है। विद्यार्थियोंके लिए भी उपयुक्त।

डी० सी० १०४ पृष्ठ • मूल्य सवा रुपया

उर्दू-साहित्य हिन्दीमें

सम्पादक : 'फ़िराक़' गोरखपुरी

१. **नज़ीरकी बानी**—डी० सी० पृष्ठ २३६, २॥) ('नज़ीर' अकबराबादीकी लोकप्रिय संगीतपूर्ण कविताओंका संग्रह)

२. **राग-विराग**—डी० सी० पृष्ठ २२०, २॥) (उर्दू साहित्यकी जगतप्रसिद्ध, चुटीली तथा संगीतपूर्ण छन्द-बद्ध प्रेम-कहानियों व नीति-पूर्ण उक्तियोंका संग्रह। उर्दू साहित्यकी प्रसिद्ध मसनवियाँ भी इसमें हैं) (पन्ना उलटिये)

३. जंजीरें टूटती हैं—डी० सी० पृष्ठ २५० से ऊपर; ३) (देश-प्रेमकी भावनासे लदी हुई उर्दूकी आधुनिक नवीनतम कविताओंका संग्रह)

४. धरतीकी करवट—डी० सी० पृष्ठ २५०, २॥) ('फ़िराक़' की नवीनतम कविताओंका कवि द्वारा ही संकलन)

उपर्युक्त पुस्तकोंमें बहुत कम उर्दूके कठिन शब्द आये हैं। प्रत्येक पुस्तकमें भूमिका, कवि और काव्य-परिचय तथा सम्पूर्ण टिप्पणियां दी गई हैं।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन — यात्रा और देश-दर्शन

हिमालय परिचय—गढ़वाल

(नक्शा तथा कई चित्रों सहित)

इसी पुस्तकपर हाल ही में उत्तर प्रदेश सरकारने १२००) का नक़द पुरस्कार लेखकको दिया है।

"यह पुस्तक न केवल राहुलजीकी ही वरन् समस्त हिन्दी संसारमें अपने विषयकी एक है......इस पुस्तकसे हिन्दी ज्ञान भांडारकी वृद्धि हुई....केवल रेफ़ेन्स बुकके तौरपर ही इसे देखें तो इसका मूल्य और महत्त्व बहुत बड़ा है।" विद्यालयों, संग्रहालयों तथा पुस्तकालयोंके लिए तो यह पुस्तक अनिवार्य है।

डी० सी० ५६९ पृष्ठ • कपड़ेकी जिल्द,
दुरंगा कवर • मूल्य दस रुपया